भाद्र मास, कृष्ण पक्ष 20 वर्ष, अंक 281 पृष्ठ 8 मूल्य 1.00

अखंड भारत संदेश

www.akhandbharatsandesh.net

प्रयागराज से प्रकाशित

नगर संस्करण प्रयागराज मंगलवार 05 सितम्बर 2021 विश्व निर्माण एवं मानव विकास को दुतगति प्रदान करने हेतु क्रियायोग आश्रम एवं अनुसंधान आश्रम की अनुपम भेंट

क्रियायोग संदेश

क्रिया योगः साँच (सच Truth) को आँच नहीं। आँच अज्ञानता (अविद्या Ignorance) समय, दूरी व सापेक्षता की अनुभूति है जो समस्त दुःखों का कारण है। अध्यात्मिक वैज्ञानिकों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सामान्य तरीके से जीवन जीने पर सच की अनुभूति के लिए व्याधि रहित लगभग दस हजार वर्ष की आवश्यकता होती है, लेकिन क्रियायोग अभ्यास से सच की अनुभूति एक ही जन्म में सम्भव है।

1. प्राचीन उच्च मानव सभ्यता मे वर्णित यज्ञ, वर्तमान में विश्व विख्यात 'क्रियायोग' है।
2. क्रियायोग अभ्यास वेदपाठ है, पूर्ण ज्ञान की अनुभूति है।
3. क्रियायोग अभ्यास ईश्वर अनुभूति है।
4. क्रियायोग अभ्यास अतीत, वर्तमान व भविष्य से जुड़ना है।
5. क्रियायोग अभ्यास जीवन मृत्यु पर विजय है।

स्वामी श्री योगी सत्यम्
क्रियायोग आश्रम एवं अनुसंधान संस्थान
प्रयागराज
10 मिनट का अभ्यास 20 वर्ष का विकास

राकेश टिकैत का ऐलानः समझौते पर अमल 10 दिन में नहीं हुआ तो महापंचायत

लखीमपुर-खीरी (एजेंसी)। लखीमपुर बवाल में मारे गए किसानों को मुआवजा समेत सभी मांगों को पूरा करने के लिए अल्टीमेटम भी दिया गया है।

सरकार के प्रतिनिधियों से वार्ता में बनी सहमति के बाद भाकियू के राष्ट्रीय प्रवक्ता राकेश टिकैत ने इस समझौते पर 10 दिन में अमल का समय दिया है। उन्होंने ऐलान किया कि अगर 10 दिन में सभी मांगें पूरी नहीं की गईं तो महापंचायत की जाएगी। संयुक्त किसान मोर्चा महापंचायत के बारे में निणय्य लेगा। तिकुनिया के एक स्कूल में पुलिस-प्रशासन के अधिकारी और मृतकों के परिजनों के बीच समझौते के बाद राकेश टिकैत ने किसानों को संबोधित किया। उन्होंने कहा कि कृषि कानूनों के विरोध में किसानों का त्याग बेकार नहीं जाएगा। तिकुनिया में जान गंवाने वाले किसानों की गिनती दिल्ली में आंदोलन के दौरान जिदंगी को अलविदा कहने वालों की सूची में शामिल किया जाएगा। उन्होंने कहा कि दिल्ली में 750 किसानों की मौत हो चुकी है। टिकैत ने कहा कि मृतक किसानों के परिजनों का एडीजी और एसीएस की मौजूदगी में समझौता हुआ है। किसानों के परिजनों की पांच मांगों को शासन ने मान लिया है। उन पर हर हाल में दस दिन के अमल करना होगा। घायलों को दस-दस लाख का मुआवजा दिया जाना है। दस दिन से अगर ज्यादा समय बीता तो किसानों की महापंचायत होगी। आंदोलन की रणनीति बनाई जाएगी।

रविवार को लखीमपुर खीरी के तिकुनिया में हुए बवाल में चार किसानों समेत आठ लोगों की जान चली जाने के बाद सोमवार को दिनभर स्थिति बेहद तनावपूर्ण रही। एक तरफ सियासी भूचाल मचा रहा तो दूसरी तरफ किसानों के शव उठाने को लेकर शासन और किसान नेता राकेश टिकैत के बीच वार्ता का क्रम जारी रहा। वार्ता के बाद एडीजी कानून व्यवस्था प्रशांत कुमार और अतिरिक्त मुख्य सचिव देवेश चुतर्वेदी ने राकेश टिकैत के साथ बैठकर आपसी सहमति का ऐलान किया।

इसमें मृतकों के परिजनों को 45-45 लाख रुपये मुआवजा, घायलों को 10-10 लाख रुपये, मृतकों के परिवार के एक-एक सदस्य को योग्यता अनुसार सरकारी नौकरी और पूरे प्रकरण की हाईकोर्ट के रिटायर जज से जांच कराने का ऐलान किया गया। इसके बाद घटना के लगभग 24 घंटे बाद किसानों के शव पोस्टमार्टम के लिए भेजे जा सके। उधर, केंद्रीय गृह राज्यमंत्री अजय मिश्र के बेटे आशीष के खिलाफ पुलिस ने हत्या समेत गंभीर धाराओं में मुकदमा दर्ज कर लिया है। भाजपा कार्यकर्ता सुमित की ओर से भी अज्ञात लोगों के खिलाफ मुकदमा लिखा गया है।

सोमवार को जिले को छावनी में तब्दील कर दिया गया। पुलिस और पीएसी तैनात कर सभी सीमाएं सील कर दी गई थीं।

किसान नेता राकेश टिकैत के अलावा पुलिस प्रशासन ने किसी भी राजनीतिक दल के नेता को जिले में नहीं घुसने दिया। कल रात से ही खीरी, पीलीभीत और शाहजहांपुर के कुछ क्षेत्रों में इंटरनेट सेवा बंद रही। बवाल के बाद पुलिस ने चार शवों को रात में ही पोस्टमार्टम के लिए भिजवा दिया था। इनमें दो भाजपा कार्यकर्ता, मंत्री के ड्राइवर और एक पत्रकार शामिल थे।

उधर, चार किसानों के शव प्रशासन कब्जे में नहीं ले सका था। उनके शव तिकुनिया में इंटर कालेज के मैदान पर दर्शन के लिए रखे गए थे। आईजी लक्ष्मी सिंह, डीएम अरविंद चौरसिया, एसपी विजय ढुल किसानों को मनाने में रात से ही लगे थे पर बात बनी नहीं। इस बीच देर रात किसान नेता राकेश टिकैत भी तिकुनिया पहुंच गए। उनके आने के बाद वार्ता का क्रम फिर नए सिरे से शुरू हुआ। इस बार एडीजी कानून व्यवस्था प्रशांत कुमार, अतिरिक्त मुख्य सचिव देवेश चतुर्वेदी भी वार्ता में शामिल हुए। छह राउंड की वार्ता के बाद आखिरकार सहमति बनी और किसानों के शव पोस्टमार्टम के लिए भेजे जा सके।

लखीमपुर हिंसाः केंद्रीय मंत्री की बर्खास्तगी पर अड़ी कांग्रेस, देशभर में कल करेगी प्रदर्शन

नई दिल्ली (एजेंसी)। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी में हुई हिंसा के बाद से विपक्ष गृह राज्य मंत्री को हटाने की मांग पर अड़ा हुआ है। कांग्रेस ने सोमवार को केंद्रीय गृह राज्य मंत्री अजय मिश्रा को तत्काल बर्खास्त करने और आठ लोगों की मौत के बाद उत्तर प्रदेश पुलिस द्वारा प्राथमिकी में नामजद उनके बेटे की गिरफ्तारी की मांग की है। इसके साथ ही पार्टी ने हिंसा में मारे गए किसानों के परिवार को एक-एक करोड़ रुपए का मुआवजा देने की मांग की है।

लखीमपुर हिंसा पर ममता ने बीजेपी को घेरा, कहा- यह राम राज्य नहीं, किलिंग राज्य है

नई दिल्ली (एजेंसी)। पश्चिम बंगाल की मुख्यमंत्री ममता बनर्जी ने सोमवार को यूपी के लखीमपुर खीरी में हिंसा को लेकर भारतीय जनता पार्टी (भाजपा) पर जमकर निशाना साधा। जिसमें चार किसानों और एक स्थानीय पत्रकार सहित कम से कम आठ लोग मारे गए थे। घटना की निंदा करते हुए बनर्जी ने कहा कि भाजपा सरकार लोकतंत्र में विश्वास नहीं करती है और केवल निरंकुशता चाहती है। 0ममता बनर्जी ने कहा कि यह बहुत ही दुखद और दुर्भाग्यपूर्ण घटना है।

दो मंत्रियों की संलिप्तता के चलते लखीमपुर की घटना हुई : मायावती

लखनऊ (एजेंसी)। बसपा सुप्रीमो मायावती ने लखीमपुर खीरी की घटना को लेकर केंद्र और राज्य सरकार को सीधे कटघरे में खड़ा किया है। उन्होंने कहा है कि यूपी के दुखद खीरी कांड में भाजपा के दो मंत्रियों की संलिप्तता के कारण इस घटना की सही सरकारी जांच व पीड़ितों के साथ न्याय और दोषियों को सख्त सजा संभव नहीं लगती है। उन्होंने सोमवार को ट्वीट कर कहा है कि इस घटना में अब तक आठ लोगों के मरने की पुष्टि हो चुकी है।

प्रियंका गांधी 15 घंटे बाद भी सीतापुर में हाउस अरेस्ट, लखीमपुर जाने पर अड़ीं, कहा-किसानों से मिलने के बाद ही टूटेगा अनशन

लखनऊ (एजेंसी)। कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी सीतापुर में हाउस अरेस्ट हैं और उन्होंने ऐलान किया है कि पुलिस उन्हें जब भी छोड़ेगी वह किसानों से मिलने लखीमपुर जरूर जाएंगी। प्रियंका गांधी ने अरेस्ट होने के साथ ही अनशन भी शुरू कर दिया है। उन्होंने किसान परिवारो से मुलाकात होने तक अनन-ग्रहण नहीं करने का ऐलान किया है। रविवार रात 12 बजे लखनऊ से निकली प्रियंका लखीमपुर नहीं पहुंच पाईं। पुलिस से बचने के लिए अपने चिरपरिचित शैली में उन्होंने रास्ते में दो से तीन बार गाडि़यां बदली लेकिन तड़के पांच बजे सीतापुर के हरगांव में उन्हें हिरासत में लिया गया। उन्हें सीतापुर पीएसी कैम्पस में हाउस अरेस्ट किया गया है।

लखीमपुर खीरी बवाल पर बोले ओवैसी-योगी कहते थे ठोंक देंगे, अब बीजेपी के लोग ठोंक रहे हैं

लखनऊ (एजेंसी)। आल इण्डिया मजलिस-ए-इत्तेहाद-ए-मुस्लमीन के राष्ट्रीय अध्यक्ष व सांसद बैरिस्टर असदउद्दीन ओवैसी ने लखीमपुर की घटना पर प्रतिक्रिया व्यक्त करते हुए कहा है कि मुख्यमंत्री योगी आदित्यनाथ कहते रहे कि ठोंक देंगे। अब उनके इस बयान को भाजपा के लोग अमली जामा पहना रहे हैं और बेकसूर किसानों को ठोंक रहे हैं। यह बात उन्होंने सोमवार को यहां एक टीवी चैनल के कार्यक्रम में कही।

ओवैसी यहां एक टीवी चैनल के कार्यक्रम में शामिल होने आए हैं। मगर इस कार्यक्रम के बाद उनकी लखीमपुर खीरी जाने की तैयारी है। पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष शौकत अली ने बताया कि प्रशासन ने लखीमपुर खीरी की सारी सीमाएं सील कर दी हैं मगर राष्ट्रीय अध्यक्ष लखीमपुर खीरी जाने का प्रयास करेंगे। अब यह पुलिस प्रशासन पर निर्भर होगा कि वह उन्हें वहां जाने देता है या नहीं। इससे पहले एआईएमआईएम प्रमुख ने अपने आधिकारिक ट्विटर अकाउंट पर लिखा कि योगी राज में कानून व्यवस्था पूरी तरह दम तोड़ चुकी है। लखीमपुर खीरी कांड इस बात का ठोस सबूत है।

7 अक्टूबर तक एनसीबी की हिरासत में रहेंगे आर्यन खान

मुंबई (एजेंसी)। 7 अक्टूबर तक नारकोटिक्स कंट्रोल ब्यूरो की हिरासत में भेज दिया गया है। एक ओर जहां एनसीबी की ओर से अडिशनल सॉलीसिटर जनरल अनिल सिंह ने आर्यन खान और अन्य आरोपियों की 13 अक्टूबर तक की कस्टडी मांगी थी तो वहीं दूसरी ओर आर्यन खान के वकील सतीश मानशिंदे बेल मांग रहे थे। ऐसे में आपको बताते हैं कि दोनों पक्षों की ओर से कोर्ट में क्या कुछ कहा गया।

एनसीबी की ओर से अडिशनल सॉलीसिटर जनरल अनिल सिंह ने कोर्ट को आर्यन खान का कथित वॉट्सऐप चैट दिखाया, जिसमें वह अज्ञात लोगों से चरस खरीदने और पैसों की लेन-देन की बात कर रहे हैं। अनिल सिंह ने कहा कि आर्यन कोडवर्ड में चैटिंग करता था और इसे डीकोड करने के लिए कस्टडी जरूरी है। इसके साथ ही अनिल ने कोर्ट में कहा कि एनडीपीसी एक्ट के सभी आरोप गैर- जमानती होते हैं और रिया चक्रवर्ती के मामले का हवाला देते हुए कहा, 'चँ ने आर्यन का फोन जब्त किया है और उसमें कई चैट्स ये बताते हैं कि उनका डीलर्स के साथ कनेक्शन है। वॉट्सऐप चैट से साफ है कि ये एक नेक्सस है और इंटरनेशनल ट्रांजैक्शन भी हुए हैं। इस मामले में आगे की जांच जारी है। कैश का ट्रांजैक्शन हुआ है और आरोपियों ने पेडलर्स से बात करने के लिए कोड वर्ड्स का इस्तेमाल किया है।

मशहूर गीतकार जावेद अख्तर के खिलाफ एफआईआर, आरएसएस की तालिबान से की थी तुलना

मुंबई (एजेंसी)। आरएसएस के खिलाफ कथित टिप्पणी के आरोप में मुंबई पुलिस ने बॉलीवुड के मशहूर गीतकार जावेद अख्तर के खिलाफ मुकदमा दर्ज किया है। यह मुकदमा स्थानीय वकील संतोष दुबे की शिकायत पर दर्ज किया गया है। जावेद अख्तर ने आरएसएस की तुलना तालिबान से की थी। सार्वजनिक मंचों या फिर सोशल मीडिया पर बॉलीवुड गीतकार जावेद अख्तर काफी सक्रिय रहते हैं। इसके अलावा वो अपनी बयानबाजी को लेकर भी सुखिर्यों में रहते हैं। इस बार उनका बयान उनके लिए गले की फांस बन गया है। आरएसएस की तुलना तालिबान से करने के मामले में मुंबई पुलिस ने उनके खिलाफ मुकदमा दर्ज किया है। एएनआई को दिए अपने बयान में एक पुलिस अधिकारी के कहा, स्थानीय अधिवक्ता संतोष दुबे की शिकायत पर मुलंद थाने में जावेद अख्तर के खिलाफ मुकदमा दर्ज किया गया है। अधिकारी के अनुसार, ङ्घभारतीय दंड संहिता की धारा 500 (मानहानि के लिए सजा) के तहत प्राथमिकी दर्ज की गई है

वॉट्सऐप, फेसबुक और इंस्टा दुनिया भर में डाउन, यूजर्स कर रहे कंम्लेन

नई दिल्ली (एजेंसी)। इंस्टैंट मेसेजिंग ऐप वॉट्सऐप , फेसबुक और इंस्टाग्राम दुनिया के कई हिस्सों में डाउन हो गए हैं। कई यूजर्स ट्विटर पर शिकायत कर रहे हैं कि वह अपने वॉट्सऐप, फेसबुक और इंस्टाग्राम अकाउंट्स तक पहुंच नहीं बना पा रहे हैं। वॉट्सऐप यूजर्स, टेक्स्ट मेसेज भेज या रिसीव नहीं कर पा रहे हैं। साथ ही, वॉइस और विडियो कॉल्स में भी प्रॉब्लम आ रही है।वहीं, फेसबुक वेबसाइट पर मेसेज आ रहा है, 'सॉरी, कुछ गड़बड़ी है। हम उस पर काम कर रहे हैं और हम इसे जल्द ही फिक्स कर देंगे।'डारेक्टर के मुताबिक, 46397 से ज्यादा वॉट्सऐप यूजर्स ने वॉट्सऐपडाउन होने के मामले को रिपोर्ट किया है। 43 फीसदी यूजर्स का कहना है कि उन्हें वॉट्सऐप एक्सेस करने में

दिक्कत हो रही है। वहीं, 27 फीसदी का का कहना है कि वह मेसेज नहीं भेज पा रहे हैं।

वॉट्सऐप ने ट्वीट किया है, 'हमें इस बात की जानकारी है कि मौजूदा समय में कुछ यूजर्स को वॉट्सऐप में दिक्कत आ रही है। हम गड़बड़ी दूर करने पर काम कर रहे हैं और हम जल्द ही इसका अपडेट देंगे।' वॉट्सऐपने ट्वीट किया है, 'हमें इस बात की जानकारी है कि मौजूदा समय में कुछ यूजर्स को वॉट्सऐप में दिक्कत आ रही है। हम गड़बड़ी दूर करने पर काम कर रहे हैं और हम जल्द ही इसका अपडेट देंगे। वॉट्सऐप ने भी सर्विसेज डाउन को लेकर ट्वीट किया है।

टोपी उतारने के सवाल पर भड़के ग्राम प्रधान , जमकर की मंत्री -विधायक विरोधी नारेवाजी

अखंड भारत संदेश

प्रयागराज। अखिल भारतीय प्रधान संगठन के तत्वाधान में पंचायती राज्य मंत्री के स्वागत हेतु जसरा विकास खंड मुख्यालय पर भारी संख्या मे पहुँचे क्षेत्रीय ग्राम प्रधानों एवम् पदाधिकारियों से जब विधायक बारा ने उन्हें टोपी उतार कर मंत्री के स्वागत की बात कही , जिस पर आक्रोशित ग्रामप्रधानों ने मंत्री भूपेंद्र सिंह चौहान एवम् विधायक के खिलाफ़ जमकर नारेबाज़ी करते हुए ब्लाक गेट पर धरना दे दिया , जिसकी सूचना पर कैबिनेट मंत्री सिद्धार्थ नाथ सिंह ने पहुँचकर काफ़ी मानमनौवल करके धरना समाप्त कराया । मंत्री की उपेक्षा से आहत संगठन के लोगों ने पूर्व निर्धारित कार्यक्रम के मुताबिक़ आज शाम 5 बजे सर्किट हाउस प्रयागराज में होने वाली बार्ता को भी निरस्त कर दिया। मंडल अध्यक्ष कमल मिश्र ने कहा की समय आने पर यह संगठन विधायक बारा की टोपी उतरवाने का काम करके इस अपमान का बदला ज़रूर लेने का काम करेगा।

समय आने पर उतरेगी विधायक की टोपी

प्राप्त जानकारी के मुताबिक़ पंचायती राज मंत्री भूपेंद्र सिंह चौहान का प्रयागराज से चित्रकूट जाने का कार्यक्रम था जिसके लिए जिला पंचायतीराज अधिकारी द्वारा अखिल भारतीय ग्राम प्रधान संगठन के प्रदेश उपाध्यक्ष सत्येंद्र तिवारी से आग्रह कर जसरा मुख्यालय पर स्वागत करने की अपील की थी जिस पर प्रधान संगठन ने अपने मंत्री के स्वागत हेतु भारी संख्या मे गेट पर पहुँच कर स्वागत करना चाहा । जहाँ पर पहले से मौजूद विधायक बारा अजय भारतीया ने संगठन के पदाधिकारियों एवं ग्राम प्रधानों से सिर पर लगी टोपी उतार कर स्वागत करने की बात कही जिस पर पदाधिकारियों ने आपत्ति जतायी तो विधायक ने मंत्री से न मिलने देने की बात कही जिस पर संगठन के पदाधिकारी एवम् क्षेत्रीय ग्राम प्रधानों ने ब्लॉक मुख्यालय गेट पर मंत्री एवं विधायक विरोधी जमकर नारे लगाए तथा ब्लाक गेट पर ही धरने पर बैठ गए । सूचना पर पहुँचे कैबिनेट मंत्री सिद्धार्थनाथ सिंह ने मंत्री एवम् विधायक की तरफ़ से गलती मानते हुए मानमनौवल कर धरना समाप्त कराया। उक्त कार्यक्रम मे प्रदेश सचिव क़ाज़ी मोहम्मद मोअज्जम एवम् मंडल अध्यक्ष कमल मिश्र , महिला मोर्चा की जिलाध्यक्ष औता की ग्राम प्रधान आरती मिश्र सहित भारी संख्या में क्षेत्रीय ग्राम प्रधान मौजूद रहे।

बुलंदशहर में किसानों ने सिपाही को दौड़ा-दौड़ाकर पीटा, संभल में कांग्रेसियों से पुलिस की झड़प

बुलंदशहर, संभल (एजेंसी)। लखीमपुरखीरी में हुए बवाल और आग की तपीश पूरे यूपी में दिखाई दी। भाकियू के साथ ही सपा और कांग्रेसियों ने हर जिले में प्रदर्शन किया। कई स्थानों पर पुलिस से नोकझोंक भी हुई। बुलंदशहर में एक सिपाही को दौड़ा-दौड़ाकर सड़क पर ही पीटा गया। संभल में कांग्रेसियों और पुलिस में नोकझोंक के बाद हालात बिगड़ते बिगड़ते बचा।

बुलंदशहर में लखीमपुर मामले को लेकर प्रदर्शन कर रहे भारतीय किसान यूनियन के कार्यकर्ताओं से पुलिस की झड़प के बाद मामला बिगड़ गई। यहां भाकियू कार्यकर्ताओं के हाथ में पुतला देख इंस्पेक्टर ने उसे छीनने का आदेश एक सिपाही को दे दिया। सिपाही पुतल छीनने पहुंचा तो भाकियू कार्यकर्ताओं से विवाद हो गया। इसी दौरान मामला इतना बढ़ गया कि भाकियू कार्यकर्ताओं ने सिपाही की पिटाई शुरू कर दी। सिपाही ने भागने की कोशिश की तो उसे सड़क पर ही दौड़ा-दौड़ाकर मारा गया। उधर संभल में कांग्रेसियों से पुलिस की झड़प हो गई। कांग्रेस नेता प्रियंका गांधी को हिरासत में दिए जाने के विरोध में संभल में कांग्रेसियों ने पुलिस की मौजूदगी में योगी सरकार का पुतला फूंक दिया। संभल के यशोदा किराए पर नारेबाजी करते हुए पहुंचे कांग्रेस कार्यकर्ताओं ने अचानक नारेबाजी करते हुए प्रदेश सरकार के पुतले को आग लगा दी। यह देख कर वहां मौजूद पुलिस कर्मी हक्के बक्के रह गए। पुलिसकर्मी कांग्रेस कार्यकर्ताओं से पुतला छीनने को आगे बढ़े तो कांग्रेस कार्यकर्ता भी उलझने लगे। इस हालात में पुलिस और कांग्रेस कार्यकर्ताओं के बीच जमकर छीना झपटी और हाथापाई हुई।

दिल्ली-मेरठ एक्सप्रेस-वे कार और ट्रक में टक्कर, 4 महिलाओं सहित पांच लोगों की मौके पर ही मौत

मेरठ (एजेंसी)। दिल्ली-मेरठ एक्सप्रेस-वे पर सोमवार को कार और ट्रक के बीच टक्कर में कार सवार पांच लोगों की मौके पर ही मौत हो गई। घटना की जानकारी मिलते ही मौके पर पहुंची पुलिस ने शवों को पोस्टमॉर्टम के लिए भेजकर जांच शुरू कर दी है। वरिष्ठ पुलिस अधीक्षक (मेरठ) प्रभाकर चौधरी ने बताया कि मेरठ जिले के थाना परतापुर क्षेत्र में सुबह करीब आठ बजे दिल्ली की तरफ से आ रही तेज रफ्तार कार सड़क के किनारे खड़े एक ट्रक से पीछे से टकरा गई, जिससे कार में सवार चार महिलाओं समेत पांच लोगों की मौके पर ही मौत हो गई, जबकि आठ माह का एक बच्चा घायल हो गया। घायल बच्चे को जिला अस्पताल में भर्ती कराया है। पांचों शवों को पोस्टमॉर्टम के लिए भेजा गया है।

खबर संक्षेप

सपा प्रदेश अध्यक्ष आज जनसभा को करेंगे संबोधित

जसरा।समाजवादी पार्टी के शीर्ष नेतृत्व के निर्देश पर प्रदेश अध्यक्ष नरेश उत्तम पटेल मंगलवार को गौहनिया बाई पास स्थित अमरेहा मैदान में जन सभा को संबोधित करेंगे। उक्त जानकारी पूर्व बारा विधान सभा प्रत्याशी अजय भारती मुन्ना ने दी है। श्री मुन्ना ने बताया कि आगामी विधानसभा चुनाव सहित अन्य मुद्दों पर वार्ता की जाएगी।

दुष्कर्म का आरोपी गिरफ्तार

घूरपुर। क्षेत्र के एक गांव की एक बुजुर्ग महिला के साथ दुष्कर्म करने वाले आरोपी को पुलिस गिरफ्तार कर जेल भेज दिया। घूरपुर थाना क्षेत्र के एक गांव की एक बुजुर्ग महिला के साथ गांव के ही एक अधेड़ आरोपित शिव नारायण उर्फ गुंडे ने जबरन एक पखवाड़े पूर्व दुष्कर्म किया था । घटना के बाद पीड़िता ने लोकलाज के चलते उस समय समय विरादरी की बात मानते हुए शिकायत नहीं की। जिसे लेकर आरोपी अधेड़ का हौशला बढ़ गया । घटना के कई दिन बाद फिर आरोपी चार दिन पूर्व की रात के समय महिला के घर पहुंचा और दुबारा दुष्कर्म करने का प्रयास करने लगा । महिला ने शोर मचाया तो आरोपी भाग निकला।

मिनी सचिवालय : पंचायती राज्यमंत्री भूपेंद्र चौधरी ने किया लोकार्पण और पौधरोपण

● अब एक ही छत के नीचे मिलेगी ग्रामीणों को सभी सुविधाएं

अखंड भारत संदेश

सोमवार को विकास खंड शंकरगंढ के कपारी ग्राम पंचायत में मिनी सचिवालय का लोकार्पण करते पंचायती राज्य मंत्री व पौधरोपण करते पंचायती राज्य मंत्री

शंकरगढ़। छोटी-छोटी समस्याओं के लिए ग्राम प्रधान, ब्लाक, तहसील, थाना का चक्कर लगाने वाले ग्रामीणों को योगी सरकार ने बड़ी सहूलियत प्रदान की है। गांव में स्थापित मिनी सचिवालय में ही ग्रामीणों की छोटी-बड़ी तमाम समस्याओं का निराकरण किया जाएगा। सोमवार को पंचायती राज्यमंत्री ने विकास खंड शंकरगढ़ के कपारी ग्राम पंचायत में स्थापित मिनी सचिवालय का लोकार्पण किया, साथ ही पौधरोपण भी किया।

राज्यमंत्री भूपेंद्र सिंह चौधरी ने कहा कि अब ग्रामीणों को कहीं पर भी भटकने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। उन्हें सभी सुविधाएं एक ही स्थान पर सुलभ होंगी। इसके लिए उन्होंने पंचायती राज विभाग को मिनी सचिवालय की व्यवस्थाओं को चुस्त-दुरुस्त बनाने और उसे अनवरत बनाए रखने का भी निर्देश दिया। लोकार्पण के उपरांत भूपेंद्र सिंह चौधरी रामनगर चित्रकूट के लिए रवाना हो गए।मिनी सचिवालय का लोकार्पण करने पहुंचे भूपेंद्र सिंह चौधरी ने कपारी के सामुदायिक शौचालय का निरीक्षण कर पौधरोपण भी किया, साथ ही सभी से पौधरोपण की अपील भी की।प्रदेश सरकार की मंशा के अनुरूप स्थापित हो रहे मिनी सचिवालय में लेखपाल, आंगनबाड़ी, एएनएम, सीएचसी, ग्राम विकास अधिकारी, रोजगार सेवक के बैठने और इनसे जुड़े कार्यों के लिए एक व्यवस्था बनाई जा रही है। इस मौके पर बारा विधायक डा. अजय कुमार, जिलाध्यक्ष विभवनाथ भारती, प्रमुख निर्मला देवी, डिप्टी डायरेक्टर, जिला पंचायत राज अधिकारी आलोक कुमार सिन्हा, सहायक डीपीआरओ आशुतोष कुमार, जयदीप त्रिपाठी, एडीओ (पंचायत) रवींद्रनाथ कुशवाहा, ग्राम विकास अधिकारी राजेंद्र कुमार मौर्य, दीपेश सिंह, प्रेमचंद्र, विजयराज सिंह, शशिकांत सिंह पटेल, आशीष कुमार,ओमप्रकाश पांडेय, रामसेवक, पूर्व प्रधान प्रतिनिधि रामबाबू सिंह, प्रधान परमेश्वर सिंह,सुभाष कुमार, पुष्पराज सिंह, फैजान अहमद, शैलेंद्र सिंह, कामता सिंह, कामद प्रताप सिंह,विधायक प्रतिनिधि मोहन यादव,विनय कुमार, मंडल अध्यक्ष कुलदीप सिंह, अखिलेश सिंह,अरुण सिंह आदि लोग मौजूद रहे।

प्रधानों का पुष्प गुच्छ न लेकर पंचायती राज मंत्री ने किया प्रधानों का अपमान

● अपमान से नाराज ग्राम प्रधानों ने विकास खंड कार्यालय के मुख्य गेट पर दिया धरना, कैबिनेट मंत्री के पहल पर माने प्रधान

अखंड भारत संदेश

विकास खंड कार्यालय के सामने प्रदर्शन करते नाराज प्रधान

प्रधानों द्वारा पुष्प गुच्छ स्वीकारते पंचायती राज मंत्री

जसरा। उत्तर प्रदेश सरकार के पंचायती राज मंत्री भूपेंद्र सिंह चौधरी का चित्रकूट में कार्यक्रम को लेकर प्रयागराज आगमन हुआ है । इसकी सूचना कि पंचायती राज मंत्री विकास खंड चाका व जसरा से होते हुए आगे की ओर जाएंगे। जिसको लेकर पंचायती राज मंत्री के स्वागत में दर्जनों प्रधान फूल माला लेकर स्वागत के लिए जसरा ब्लॉक पर एकत्रित रहे। सोमवार को प्रयागराज के डीपीआरओ द्वारा प्रधानों को सूचना दी गई कि पंचायती राज मंत्री भूपेंद्र सिंह चौधरी के स्वागत के लिए सभी प्रधान विकास खंड कार्यालय चाका व जसरा ब्लॉक पर एकत्रित होकर मंत्री जी का स्वागत करें। इसी क्रम में जसरा और कौंधियारा प्रधान गण जसरा ब्लॉक पर उपस्थित हुए तथा अखिल भारतीय प्रधान संगठन की टोपी पहनकर मंत्री के स्वागत में बुके और गुलाब का फूल लेकर खड़े रहे । वहीं पंचायतीराज मंत्री के स्वागत के लिए विकास खंड जसरा कार्यालय के द्वार पर खड़े बारा विधायक डॉ अजय कुमार ने प्रधानों से कहा कि आप अपनी संगठन की हरी टोपी उतार दीजिए नहीं तो मंत्री जी नाराज हो जाएंगे । प्रधानों का आरोप है कि विधायक के कहने पर मंत्री ने प्रधानों का पुष्प गुच्छ और गुलाब का फूल नहीं लिया। तथा प्रधानों का अपमान करके आगे की ओर चले गए। विकास खंड कार्यालय जसरा के नाराज प्रधानों ने अखिल भारतीय प्रधान संगठन के बैनर तले जसरा कार्यालय के मुख्य गेट पर धरना देकर बैठ गए तथा मंत्री जी को बुलाने की मांग पर अड़ गए। अखिल भारतीय प्रधान संगठन के प्रदेश उपाध्यक्ष सत्येंद्र त्रिपाठी के नेतृत्व में विकास खंड जसरा व कौंधियारा के दर्जनों प्रधान लगभग तीन घंटे तक कड़ी धूप में विकास खंड कार्यालय के द्वार पर धरना प्रदर्शन करते रहे। प्रधानों द्वारा विकास खंड कार्यालय के द्वार पर धरना देने की जानकारी जब खादी ग्रामोद्योग मंत्री डॉ सिद्धार्थ नाथ सिंह को हुई तो वे मौके पर पहुंचे तो प्रधानों को सम्मान सहित सर्किट हाउस में बुलाकर सम्मानित कराने की बात कर प्रधानों का धरना समाप्त करवा दिए। धरना साढ़े नौ बजे से शुरू होकर 1:00 बजे तक चला। इस मौके पर कैबिनेट मंत्री के मीडिया प्रभारी दिनेश त्रिपाठी ने बताया कि जल्द ही प्रधानों को सर्किट हाउस में सम्मानित किया जाएगा। धरने में प्रधान संघ के अध्यक्ष दारा सिंह पटेल , बिहारी लाल जायसवाल ,लल्लू सिंह ,आशीष सोनकर ,सुरेंद्र सोनकर, बृजेश सोनकर , राम मनोहर कुशवाहा ,विजय बी पटेल,शिव मोहन पटेल ,भीम सिंह पटेल ,कौशलेंद्र पटेल , विराट तिवारी, सूरज यादव,राघवेंद्र कुमार मिश्र, कृष्णानंद ओझा ,मनोज सोनकर ,दीपेंद्र सिंह आदि लोग उपस्थित रहे। धरना लगभग 2 घंटे तक चला प्रधानों के धरने के बीच खादी ग्रामोद्योग मंत्री सिद्धार्थ नाथ पहुंचे तथा प्रधानों को सम्मानित कर उनके बुके व गुलाब के फूल स्वीकार किया। उन्होंने कहा कि ग्राम प्रधानों का हमेशा स्वागत किया जाएगा । इसके बाद धरना समाप्त हो गया।

मैलहा गांव में मनमानी का आरोप, तहसील दिवस में शिकायत,जांच का निर्देश

कोरांव। ब्लॉक कोरांव के ग्राम पंचायत मैलहा में ग्राम प्रधान और ग्राम विकास अधिकारी पर मनमानी और सरकारी धनराशि की हेरा फेरी का आरोप है। तहसील दिवस कोरांव में भोला नाथ सिंह ने शिकायत दर्ज कराई है कि अवैध नाली निर्माण हेतु खनन कराया जा रहा है। भूखंड संख्या 558 से चल कर भूखंड संख्या 446 चक मार्ग से लगी हुई नाली का खनन नही कराया है। दरअसल बीच में 60 मीटर नाली खुदाई गई है। जिसको वर्तमान ग्राम प्रधान के परिजनों ने पाट कर धान की रोपाई कर लिए हैं। आरोप है कि रंजिशन भोला सिंह के घर के सामने नाली खोद कर छोड़ दी गई है। जिससे आने जाने में खतरा उत्पन्न हो गया है। क्योंकि इसके पूर्व भी भैंस का बच्चा गिर कर मर चुका है। और न ही नाली का ढक्कन लगाया जा रहा है। इसी प्रकार ग्राम प्रधान द्वारा विकास के नाम पर फार्जी बिल बाउचर के जरिए सरकारी राशि की हेराफेरी का भी आरोप लगाया गया है। जिसकी जांच तहसील दिवस प्रभारी ने खंड विकास अधिकारी कोरांव को करके कृत कार्यवाही से अवगत किए जाने का निर्देश दिया है।

पुलिस बनी रही मूकदर्शक घूरपुर में फूंका योगी सरकार का पुतला

लखीमपुर खीरी में किसानों की हुई मौत को लेकर क्षेत्र में कई जगह हुआ विरोध प्रदर्शन

अखंड भारत संदेश

घूरपुर में योगी सरकार का पुतला फूंकते किसान

घूरपुर। लखीमपुर खीरी में किसानो की हुई मौत के विरोध में सोमवार के दिन घूरपुर के बीकर गांव में तीन घंटे सभा कर अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा के सदस्यों ने योगी सरकार का पुतला फूक विरोध प्रदर्शन किया। घूरपुर पुलिस इस बीच मूक दर्शक बनी रही। वक्ताओं ने कहा कि लखीमपुर खीरी में किसानों के ऊपर आरएसएस बीजेपी सरकार के गुंडों द्वारा गाड़ी चढ़ाकर बर्बरता पूर्वक किसानों की हत्या की गई है। जिसे किसान बर्दाश्त नहीं करेगी। सरकार विरोधी नारा लगाते हुए योगी सरकार का पुतला फूंक विरोध प्रदर्शन किया।कहा कि इस घटना के विरोध में लगातार गांव गांव मे विरोध सभाएं चलती रहेंगी 10 अक्टूबर को लालापुर के ओढ़गी तरहार में मजदूर पंचायत की जाएगी। इस पंचायत में हजारों किसान भागीदारी करेंगे। प्रदर्शनकारी किसानो पर गाडियां चढ़ाने से 4 किसानो की मौके पर मृत्यु हो गई है वहीं किसान नेता तेजेंदर सिंह विर्क समेत आठ किसान घायल हो गए हैं। वक्ताओं ने कहा कि अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा इस घटना की कड़ी निन्दा कर मांग की है कि भाजपा मंत्री अजय मिश्र व उसके बेटे अभिषेक मिश्रा को धारा 302 के तहत गिरफ्तार किया जाए; एस पी व डीएम को सस्पेंड किया जाय। कार्यक्रमों को संबोधित जिला अध्यक्ष रामकैलास कुशवाहा,राज्य महासचिव हीरा लाल , रामू निषाद, नरेश भारतीय ,राजेश, विनोद निषाद ,आकृति सागर, विमला, रीता देवी आदि ने किया।घूरपुर पुलिस अखिल भारतीय किसान मजदूर सभा इस घटना की कड़ी निन्दा कर मांग की है कि भाजपा मंत्री अजय मिश्र व उसके बेटे अभिषेक मिश्रा को धारा 302 के तहत गिरफ्तार किया जाए; एस पी व डीएम को सस्पेंड किया जाय। जिला अध्यक्ष राम कैलास कुशवाहा, राज्य महासचिव हीरा लाल, रामू निषाद, नरेश भारतीय, राजेश, विनोद निषाद ,आकृति सागर, विमला, रीता देवी आदि ने किया।घूरपुर पुलिस योगी सरकार का पुतला फूंकते समय मूक दर्शक बनी रही।

अखिलेश की गिरफ्तारी को लेकर प्रतापपुर के सपाइयों में आक्रोश

प्रतापपुर। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर में किसानों के मौत के मामले ने पूरे प्रदेश में अफरा-तफरी का माहौल बना दिया है।सोमवार को समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष व पूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव के लखीमपुर जाने के कार्यक्रम पर पाबंदी लगा दी और गिरफ्तार कर लिया।इससे नाराज होकर प्रतापपुर के सपाइयों में आक्रोश फैल गया और उन्होंने पूर्व विधायक विजमा यादव के नेतृत्व में ब्लॉक मुख्यालय के बाहर धरना प्रदर्शन किया।इस मौके पर विजमा यादव ने कहा जिस प्रकार केंद्रीय गृह राज्यमंत्री के पुत्र द्वारा किसानों को मौत के घाट उतारा गया यह बेहद निंदनीय है।मृतक किसानों को श्रद्धांजलि देते हुए धरना पर्दशन समाप्त किया।इस मौके पर पूर्व विधानसभा अध्यक्ष जीतलाल यादव, योगेश शर्मा, राधेश्याम भास्कर, अशोक अंजान, राजकुमार यादव, विवेक यादव, अजय कनौजिया, लालमणि पाल, भीम यादव, शैलेन्द्र यादव, संदीप यादव आदि कार्यकर्ता उपस्थित रहे।

सपाइयों में आक्रोश बैठे धरना पर पुलिस ने किया गिरफ्तार

उतरांव। उतरांव थाना क्षेत्र के बलीपुर बाजार में सपाइयों ने दर्जनों की संख्या में सपाई धरने पर बैठ गए।सपाईयों को पुलिस ने गिरफ्तार कर थाने ले आई।सपा के राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिलेश यादव की रिहाई को लेकर भावी विधायक प्रत्याशी व सपा राष्ट्रीय सचिव रब्बानी की अगुवाई में दर्जनों से ज्यादा कार्यकर्ता बलीपुर हनुमान मंदिर के पास धरने पर बैठकर विरोध प्रदर्शन शुरू किए। वही सूचना पर उतरांव थाना अध्यक्ष धीरेंद्र कुमार सिंह अपनी पुलिस टीम के साथ मौके पर पहुंचकर विधायक प्रत्याशी एरम रब्बानी व अल्पसंख्यक जिला उपाध्यक्ष सुल्तान सिद्दीकी को हिरासत में लिया।यह देख सपा कार्यकर्ताओं में आक्रोश हुआ तो जोर-जोर पुलिस प्रशासन मुदार्बाद के नारे लगाने लगे। पुलिस ने उपस्थित सभी सपा कार्यकर्ताओं को हिरासत में लेकर उतराव थाने लाई। फिर हाल सपाइयों की गिरफ्तारी से क्षेत्र के सभी सपा कार्यकर्ताओं में आक्रोश व्याप्त है। उक्त अवसर पर अमृत लाल उर्फ भोला पासी जिला उपाध्यक्ष,इंजमाम उल हक, रेहान हाशमी,नजरे आलम,मोहम्मद इमरान सिद्दीकी,अशरफ अली,लव कुश, आरके सरोज,सुधीर यादव,मोहम्मद नईम इरशाद अदनान आदि लोग मौजूद रहे।

भारतीय किसान यूनियन ने पंचायत कर एसडीएम सौपा ज्ञापन

जंघई। लखीमपुर खीरी की घटना के विरोध मे भारतीय किसान यूनियन के जिलाध्यक्ष राजनाथ यादव ने जंघई मे किसान पंचायत करके मछलीशहर एसडीएम को ज्ञापन सौंपा। सोमवार को भारतीय किसान यूनियन द्वारा जंघई बस स्टैंड पर लखीमपुर खीरी में किसानों की कार द्वारा की गई हत्या के विरोध में शांतिपूर्वक धरना प्रदर्शन किया गया धरना का नेतृत्व राजनाथ यादव जिलाध्यक्ष भारतीय किसान यूनियन जौनपुर ने किया।लखीमपुर खीरी में किसानों की हत्या करने वाले दोषी व्यक्ति के विरुद्ध धारा 302 के अंतर्गत मुकदमा पंजीकृत किया जाए शहीद हुए 6 किसानों के परिवारवालों को एक करोड़ रुपए मुआवजा दिया जाए तथा परिवार के एक सदस्य को सरकारी नौकरी दिया जाए।केंद्रीय गृह राज्य मंत्री अजय मिश्रा को तत्काल केंद्रीय मंत्रिमंडल से बर्खास्त किया जाए लखीमपुर खीरी की धरना की स्वयं जिम्मेदारी लेते हुए मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश अपने पद से इस्तीफा दें। उत्तर प्रदेश की बिगड़ती हुई कानून व्यवस्था को देखते हुए प्रदेश में राष्ट्रपति शासन लगाया जाए अंत मे एसडीएम मछलीशहर राजेश कुमार वर्मा को ज्ञापन सौंपा गया।इस मौके पर खलील, फूलचंद, धर्मराज, प्रमोद, सुरेंद्र, शैलेश वर्मा रामसुख, कंचन, संजू, शुभावती, उर्मिला, जानकी, प्रेमा, अमृता, लालती, रामा, निशा आदि लोग उपस्थित रहे।

किसानों पर अत्याचार बंद करे सरकार : पिंटू चौबे

कोरांव। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी में केंद्रीय मंत्री के बेटे की गाड़ी से कुचलकर किसानों की मौत के मामले में देशभर के किसानों में भारी रोष व्याप्त है किसानों ने कोरांव चौराहे पर जुलूस निकालकर प्रदर्शन करते हुए उपजिलाधिकारी कोरांव अभिनव कनौजिया को तीन सूत्रीय ज्ञापन सौंपा।हालांकि देश भर में किसानों और विपक्ष के तेवर को देखते हुए सुबह से ही प्रशासन चौकन्ना दिखी और लगातार विपक्ष के नेताओं एवम चर्चित किसान नेताओं पर नजर बनाए रखी इसके बावजूद भी प्रशासन के नजरो में धूल झोकते हुए आंदोलनकारी आंदोलन करने में सफल रहे। उक्त मौके पर भारतीय किसान यूनियन भानू के युवा मंडल अध्यक्ष पिंटू चौबे जिला पंचायत सदस्य ने कहा कि किसान आंदोलन को दबाने की यह सत्ता पक्ष की नाकाम कोशिश है और इसको देश का किसान किसी भी हाल में सफल नहीं होने देगा किसानों पर अत्याचार बंद करे सरकार। इसी क्रम में समाजवादी पार्टी के नेता प्रमोद मिश्र पयासी के नेतृत्व में सपाइयों ने पार्टी सुप्रीमो अखिलेश यादव के गिरफ्तारी और किसानों के निर्मम हत्या के विरोध में आंदोल न रत किसानों का समर्थन करते हुए दर्जनों कार्यकताओं के साथ सम्मिलित होते हुए। उपस्थित लोगो को संबोधित करते हुए कहा की किसान विरोधी बिल को लेकर सैकड़ों किसानों ने अपने प्राणों की आहुति दे दिया। लेकिन सरकार में बैठे लोगो का किसानों से कोई सरोकार नहीं है, और शासन की उदासीनता से दिन प्रतिदिन किसानों के आक्रोश को बढ़ाने का कार्य कर रहा है। इस मौके पर समाजवादी पार्टी के नगर अध्यक्ष मेहताब खान ने कहा की जिस तरह से सत्ता के नशे में चूर केंद्रीय मंत्री के बेटे ने किसानों पर गाड़ी चढ़ा कर किसानों की निर्मम हत्या किया है यह निंदनीय है और आने वाले दिनों में किसान ईट का जवाब पत्थर से देने का काम करेंगे। उक्त मौके पर मुख्य रूप से राजेश पांडे जिला सचिव समाजवादी पार्टी प्रकाश सिंह पटेल किसान नेता कमलेश कुमार मिश्रा कामता प्रसाद यादव देवराज मिश्रा इमरान अली सपा नेता सफात अली, शंभूनाथ आदि लोग उपस्थित रहे।

न्यूज झरोखा

शांतिपूर्ण ढंग से मनाएं त्योहारः एसपी यमुनापार

नैनी। आगामी त्योहार दुर्गापूजा एवं श्री राम लीला मंचन सहित अन्य त्योहार को देखते हुए सोमवार को नैनी कोतवाली परिसर में एसपी यमुनापार सौरभ दीक्षित एवं करछना क्षेत्राधिकारी राजेश कुमार यादव की देखरेख में पीस कमेटी बैठक का आयोजन किया गया। इस दौरान अधिकारियों ने बैठक में कोविड-19 की गाइडलाइन का पालन करते हुए परामपरागत तरीके से त्योहार मनाने हेतु लोगों से अपील की और सम्बन्धित शासन के निदेर्शों को भी अवगत कराया। एसपी यमुनापार सौरभ दीक्षित ने पीस कमेटी की बैठक में मौजूद लोगों से कहा कि शांतिपूर्ण ढंग से आने वाले समस्त त्योहारों को मनाएं, ताकि समाज में एक अच्छा संदेश जाए। वहीं मौजूद लोगों ने जिला प्रशासन से सुरक्षा दृष्टि मदद की भी गुहार लगाए। सीओ करछना ने कहा कि आप लोग कोई नई परंपरा को लागू न करें। जिससे कानून व्यवस्था बिगड़े। पुलिस और समाज में एक दूसरे का सहयोग अत्यधिक होना जरूरी है। बैठक के दौरान मौजूद लोगों और अधिकारियों के बीच आगामी त्योहारों को लेकर समस्त मुद्दों पर गहन मंथन भी किया गया और दोनों ओर से एक दूसरे को सहयोग देने की बात कही गई। इस दौरान इंस्पेक्टर अनिल कुमार सिंह, एसएसआई अजय कुमार सिंह, एसआई कैलाश राम सहित घनश्याम जायसवाल, बीबी दुबे, राकेश जायसवाल, नयन कुशवाहा सहित क्षेत्र के दर्जनों गणमान्य व्यक्ति मौजूद रहे।

केन्द्रीय मंत्रीका भाजपाईयों ने किया स्वागत

घूरपुर। शंकरगढ़ के कपारी ग्राम पंचायत के नव निर्मित पंचायत भवन का उद्घाटन करने जा रहे केन्द्रीय मंत्री डॉ.महेंद्र नाथ पांडेय,उत्तर प्रदेश सरकार के पंचायती राज्य मंत्री भूपेंद्र चौधरी, सिध्दार्थ नाथ सिंह का घूरपुर मे भाजपा जिला अध्यक्ष विभव नाथ भारती के नेतृत्व में दर्जनों भाजपाईयो ने जोरदार स्वागत किया।स्वागत अभिनंदन करने वालों मे जिला मंत्री कमलेश तिवारी, जिला मीडिया प्रभारी दिलीप कुमार चतुर्वेदी,शिवराम सिंह परिहार,अनूप केशरवानी,दिनेश तिवारी,डां.विनोद त्रिपाठी,राजमणि पटेल,राम कुमार शर्मा,सुरेंद्र पटेल,जगत नारायण शुक्ला, सुनील भारतीय,नवनीत मिश्र,शंकरलाल पांडेय,संजीव त्रिपाठी,संजीव मिश्रा,सतीश तिवारी आदि लोगों ने बुके व फूल माला भेटकर जोरदार स्वागत अभिनंदन किया। इसके पूर्व क्षेत्रीय समस्याओं के संदर्भ में सर्किट हाउस प्रयागराज में जिलाध्यक्ष विभव नाथ भारती ने केन्द्रीय मंत्री संजीव वालियान और पंचायती राज मंत्री भूपेंद्र चौधरी के साथ बैठकर चर्चा किए।

देश प्रदेश का हो रहा सर्वांगीण विकास : शारदा प्रसाद

प्रतापपुर। राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के पूर्व जिला प्रचारक शारदा प्रसाद पाठक ने प्रतापपुर विधानसभा के सारीपुर में जनसंपर्क के दौरान केंद्र एवं प्रदेश सरकार द्वारा किए गए कार्यों पर चर्चा किया साथ ही साथ आगामी विधानसभा चुनाव पर भी चर्चा किया।कहा कि प्रतापपुर विधानसभा के लिए यदि पार्टी ने मुझे टिकट दिया तो क्षेत्र का सर्वाधिक सर्वांगीण विकास करूँगा विकास के लिए अपनी उर्जा लगा दूंगा। जनसंपर्क में विनोद तिवारी, प्रमोद द्विवेदी, राकेश उपाध्याय, रमेश उपाध्याय, चन्द्रभूषण द्विवेदी, जय कुमार उपाध्याय, नवीन उपाध्याय, रामचंद्र पाण्डेय, सूरज तिवारी, बालकेशर द्विवेदी, मनोज सिंह आचार्य, अरुण उपाध्याय, अमित द्विवेदी, अभिनव द्विवेदी, रंगनाथ उपाध्याय, उमाकांत द्विवेदी, लक्ष्मीकांत द्विवेदी, सत्यम तिवारी, अवनीश उपाध्याय, संगम द्विवेदी, संतोष उपाध्याय, राजाराम प्रजापति, लल्लन गुप्ता, गोविंद गुप्ता, अनिकेत तिवारी आदि लोग उपस्थित थे।

शिवराजपुर में महेंद्र नाथ और सिद्धार्थनाथ सिंह का भव्य स्वागत

शंकरगढ़। सोमवार को चित्रकूट, रामनगर जाते समय भाजपा कार्यकताओं ने केंद्रीय मंत्री महेंद्र नाथ पांडेय व कैबिनेट मंत्री सिद्धार्थनाथ सिंह का जोरदार स्वागत किया। बता दें कि सोमवार को केंद्रीय मंत्री अनुप्रिया पटेल की सास की तेरहवीं है। उसी में शामिल होने के लिए कई नेता, मंत्री, विधायक और सांसद पहुंच रहे हैं। सिद्धार्थनाथ सिंह भी उसी कार्यक्रम में शिरकत करने के लिए जा रहे थे। शिवराजपुर में स्वागत करने वालों में जिलाध्यक्ष विभवनाथ भारती, पूर्व मीडिया प्रभारी दिनेश तिवारी, कोषाध्यक्ष अनूप केसरवानी, जिला मंत्री शिवराम सिंह परिहार डॉ विनोद त्रिपाठी, सतीश तिवारी, दिलीप कुमार चतुर्वेदी, राजमणि पटेल, छोट्टन महराज, गुड्डा मिश्र समेत तमाम भाजपाइयों ने बुके व फूल माला भेंट कर स्वागत अभिनंदन किया।

जि.पं अध्यक्ष ने प्रतियोगियों को किया सम्मानित

सहसों। भारतीय जनता पार्टी युवा मोर्चा के तत्वाधान में सोमवार को छत्रपति शिवाजी डिग्री कॉलेज सहसों में प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम आयोजित की गई। जिसमें उपस्थित बतौर मुख्य अतिथि प्रयागराज के जिला पंचायत अध्यक्ष डॉ वी के सिंह ने प्रतियोगी छात्र छात्राओं का उत्साहवर्धन करते हुए उन्हें प्रमाण पत्र देकर सम्मानित किया। उन्होंने प्रतियोगी छात्र छात्राओं से कहा इसी तरह आप लोग अपने घर परिवार माता पिता गुरुजनों और इस देश का भी नाम रोशन करें। इस अवसर पर भाजपा के गंगापार जिला अध्यक्ष अश्वनी दुबे ने कहा कि भाजपा सरकार में युवाओं को अपना उज्जवल भविष्य बनाने के लिए हर क्षेत्र में अवसर मिल रहा हैं। उपस्थित जिला उपाध्यक्ष अनिरुद्ध सिंह पटेल ने भी अपने विचार रखे। एवं भाजपा युवा मोर्चा के जिला अध्यक्ष नवीन सिंह पटेल ने आए हुए सभी अतिथियों का आभार प्रकट किया। कार्यक्रम के संयोजक राघवेंद्र सिंह सिंगरौर ने धन्यवाद ज्ञापित किया। संचालन वीरेंद्र मिश्र ने किया। इस मौके पर अर्पित, मानसिंह, राघवेंद्र सिंह, कमलेश मोर्या, पुष्पेंद्र सिंह सूबेदार गुप्ता, के पी सिंह, महेश सोनी, धर्मेंद्र सिंह, पुष्कर सिंह सहित आदि लोग मौजूद रहे।

दबंगो ने पशुओं से चरा दिया गरीब की पपीते की फसल

प्रतापपुर। दबंगो द्वारा द्वेषवश गरीब किसान द्वारा रोपित पपीते के सैकड़ो पौधों को पशुओं से जानबूझ कर चरा देने से गरीब किसान का करीब दस हजार लागत बर्बाद हो गयी। आराखुर्द निवासी जुबेर ने बताया कि उनका फतेहपुर माफी में खेत है वही उन्होंने पपीते के लगभग सैकड़ो पौधे रोपित किया हुआ था।उनका आरोप है कि उनके खेत के ही बगल कुछ लोगो द्वारा दबंगई के चलते उनके पपीते के पौधों को पशुओं से चरा दिया उलहना देने पर कहते है कि जहाँ शिकायत करनी हो जाओ करो हमारा कोई कुछ नही बिगाड़ सकता।जुबेर ने बताया इसके पहले भी कई बार उनकी फसल को नुकसान पहुचाया जा चुका है।

खबर संक्षेप

बाजार में सब्जी लेने गए युवक की बाइक चोरी

सहसों। बाजार में सब्जी खरीदने गए एक युवक की बाइक को चोर लेकर चंपत हो गए। खोजबीन के बावजूद जब बाइक नहीं मिली तो भुक्तभोगी ने स्थानीय थाने में तहरीर देकर कार्रवाई की मांग किया। थरवई थाना क्षेत्र के रामनगर निवासी सुरेश कुमार अपनी बाइक लेकर सरायइनायत थाना क्षेत्र के कसेरूआ कला गांव स्थिति लाला बाजार में सड़क किनारे बाइक खड़ी करके सब्जी खरीदने के लिए चला गया। लौटकर आया तो उसकी बाइक गायब थी। अपने स्थान पर बाइक को ना देख कर युवक के होश उड़ गए। खोजबीन के बाद भी जब कोई पता नहीं चला तो उसने थाने में तहरीर देकर कार्रवाई की मांग किया। पुलिस ने भुक्तभोगी की तहरीर पर मुकदमा पंजीकृत करके चोरों को तलाश रही हैं।

भाई के साथ घूमने के बहाने युवक ने लगाई यमुना नदी में छलांग

अखंड भारत संदेश

पानी में उतरकर गोताखोरों ने की खोजबीन, नहीं लगा कोई सुराग

नैनी। अपने भाई के साथ घूमने के बहाने एक युवक सोमवार को नए यमुना पुल से छलांग लगा दिया। जिससे वहां पर हड़कंप मच गया और लोगों की भारी भीड़ जमा हो गई। अपने भाई को बचाने के लिए युवक भी कूदने के लिए प्रयास करने लगा तो मौजूद पुलिसकर्मियों ने उसे पकड़ लिया। सूचना मिलने पर जल पुलिस के साथ ही गोताखोरों की टीम मौके पर पहुंची और घंटों पानी में उतर कर युवक की तलाश की, लेकिन उसका कोई भी सुराग नहीं मिला। जानकारी के मुताबिक घूरपुर थाना क्षेत्र के हथिगन गांव निवासी राजा भारतीया (20) पुत्र दुर्गेश भारतीया का मानसिक हालत सही नहीं चल रहा है। सोमवार दोपहर को वह अपने भाई अर्जुन के साथ इलाज करा कर वापस घर की ओर लौट रहा था। राजा भारतीया ने अपने भाई से घुमाने के लिए इच्छा प्रकट की, जिसपर दोनों भाई बाइक पर सवार होकर सोमवार दोपहर को नए यमुना पुल पिलर नंबर 18 के समीप पहुंचे। बताया जाता है कि पीछे बैठे राजा भारतीया चलती बाइक से उतर गया और वह रेलिंग पर चढ़कर यमुना नदी में छलांग लगा दिया। यह देख उसके भाई के होश उड़ गए और उसने शोर मचाना शुरू कर दिया। तब-तक लोगों की भारी भीड़ जमा हो गई। सूचना मिलने पर पुलिस मौके पर पहुंची और जांच पड़ताल करने में जुट गई। तभी अचानक अर्जुन अपने भाई को बचाने के लिए छलांग लगाने की कोशिश करने लगा। हालांकि मौके पर मौजूद पुलिस के जवानों ने उसे सुरक्षित बचाते हुए कब्जे में ले लिए। जल पुलिस के साथ ही गोताखोरों की टीम मौके पर पहुंची और यमुना नदी में उतर कर डूबे हुए युवक की तलाश देर शाम तक करते रहे, लेकिन उसका कोई भी सुराग नहीं मिला। इस संबंध में फूल मंडी पुलिस चौकी प्रभारी उमेश यादव ने बताया कि अंधेरा होने की वजह से खोजबीन को बंद कर दिया गया और मंगलवार सुबह एक बार फिर शुरू किया जाएगा।

बालू कारोबारी को सटाया असलहा, धमकी

नैनी। कोतवाली क्षेत्र के गंगोत्री नगर मोहल्ले में दो दबंगों ने एक बालू कारोबारी के सिर पर असलहा सटाकर जान से मार देने की धमकी दे डाली। आरोपियों के खिलाफ रिपोर्ट दर्ज कराने के लिए भुक्तभोगी ने नैनी कोतवाली में तहरीर दी है। औद्योगिक क्षेत्र के महुआरी ग्राम सभा के बरिका मजरा निवासी राजू कुमार पुत्र लालजी भारतीया बालू का व्यवसाय करते हैं। उसने नैनी कोतवाली पुलिस को तहरीर देकर बताया है कि दो दिन पूर्व देर रात लगभग 12:00 बजे उसके नैनी कोतवाली क्षेत्र के गंगोत्री नगर, 60 फीट रोड स्थित दुकान पर शाह जी का पूरा गांव के रहने वाले दो सगे भाई पहुंचे और पुराने विवाद को लेकर कहासुनी करने लगे। आरोप है कि बात आगे बढ़ी तो दबंगों ने असलहा निकाल कर उसके सिर पर सटा दिए और जान से मार देने की धमकी देने लगे। जब तक आसपास के लोग दोनों को पकड़ पाते। वह दोनों अंजाम भुगतने की धमकी देते हुए चले गए।

सीएम नें रोजगार सेवकों का बढ़ाया मानदेय रोजगार सेवकों नें जताई खुशी

अखंड भारत संदेश

लखनऊ से लौटने पर रोजगार सेवकों नें जताई खुशी ।

करछना। सोमवार को मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश नें लखनऊ में आयोजित महात्मा गाँधी राष्ट्रीय रोजगार गारंटी योजना सम्मेलन कार्यक्रम में प्रदेश के सभी रोजगार सेवकों, तकनीकी सहायकों एवं कम्प्यूटर ऑपरेटर के पद पर कार्यरत रोजगार सेवकों के सम्मेलन में उन्हे उत्कृष्ट कार्य पर सम्मानित किया और उनके मानदेय में बढोंतरी कर प्रोत्साहित किया गया और उनकी कयी मांगो पर मुहर लगाई है । लम्बे समय से गांवो के विकास की धुरी कहें जाने वाले मुखिया प्रधानो के साथ कार्य करने वाले रोजगार सेवकों की कयी मांगो को लेकर कयी बार रोजगार सेवक संघ की ओर से धरना प्रदर्शन कर चुके रोजगार सेवकों की मांग को मुख्यमंत्री उत्तर प्रदेश ने लखनऊ में आयोजित महात्मा गांधी रोजगार गारंटी योजना के अंतर्गत रोजगार सेवकों का मानदेय में दो हजार की बढ़ोत्तरी एवं तकनीकी सहायकों एवं कम्प्यूटर सहायकों के मानदेय में पांच हजार रुपये की बढ़ोत्तरी की गयी व अन्य मांगों पर मुहर लगाई है । विकास खंड करछना के गांवो में सौ से अधिक रोजगार सेवक लखनऊ में आयोजित महात्मा गांधी रोजगार गारंटी सम्मेलन में भाग लेकर लौटने पर मुख्यमंत्री को बधाई देते हुए खुशी जताई ।इस मौके ब्लाक करछना के रोजगार सेवक संघ महेंद्र यादव, मनीष शुक्ला, अरविंद कुमार, सचिन यादव सहित बड़ी संख्या में रोजगार सेवकों ने बधाई देते हुए खुशी जताई है।

देश व प्रदेश को किसान एवं नौजवान ही बचा सकता है : नरेश उत्तम

नरेश उत्तम को चांदी का मुकुट पहनाकर स्वागत करते

सहसों। उत्तर प्रदेश में समाजवादी पार्टी द्वारा चलाए जा रहे किसान और नौजवान पटेल यात्रा के अवसर पर फूलपुर विधानसभा क्षेत्र के रुदापुर स्थित बंदरहिया बाग में समाजवादी पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष नरेश उत्तम पटेल ने एक जनसभा को संबोधित किया। उन्होंने भारतीय जनता पार्टी एवं कांग्रेस पर तीखे तंज कसते हुए कहा देश व प्रदेश को किसान एवं नौजवान ही बचा सकता है। आज प्रदेश की कानून व्यवस्था एकदम ध्वस्त हो चुकी है। प्रदेश में गुंडाराज के चलते लखीमपुर खीरी में किसानों के ऊपर बर्बरता पूर्ण ढंग से कार्रवाई की गई। जिसके चलते किसानों की निर्मम हत्या हो गई। 70 वर्षों में एक बार भी किसान की हालात ठीक नहीं हुई। उन्होंने कहा 2014 में प्रधानमंत्री ने किसानों की आय दोगुनी करने,काला धन वापस लाने सहित तमाम वादे किए जो एकदम झूठे साबित हुए। सरदार पटेल के सपनों को साकार करने के लिए किसानों,नौजवान,गरीब, मजदूरों को संगठित होकर आने वाली पीढ़ी के भविष्य के लिए सपा का साथ देना होगा। कांग्रेस की गलत नीतियों के कारण आज देश गरीब हो गया है। देश व प्रदेश के अंदर कुटीर उद्योग चौपट हो गया हैं शिक्षित नौजवान बेरोजगार हो गया है। उन्होंने आने वाले विधानसभा चुनाव के लिए कार्यकताओं को अधिक से अधिक मतदाता सूची में जोड़ने तथा संशोधन करने पर बल दिया। जनसभा कार्यक्रम के प्रारंभ में समाजवादी पार्टी के पूर्व सांसद नागेंद्र सिंह पटेल एवं अशोक यादव ने चांदी का मुकुट पहनाकर उनका स्वागत करते हुए सम्मानित किया। उपस्थित कार्यकताओं एवं पदाधिकारियों ने माल्यार्पण एवं अंगवस्त्रम भेंट कर उनका स्वागत किया। कार्यक्रम में सपा के प्रदेश सचिव अखिलेश कटारिया, पूर्व सांसद धर्मराज पटेल , पूर्व सांसद नागेंद्र सिंह पटेल पूर्व विधायक विजमा यादव, पूर्व विधायक पूजा पाल, पूर्व विधायक शहीद अहमद, पूर्व विधायक परवेज टंकी, हाजी मासूक खान, पूर्व अध्यक्ष कृष्ण मूर्ति सिंह यादव, श्याम लाल पाल, राम सुंदर पाल, रामेंद्र मिश्रा सहित आदि ने संबोधित किया। कार्यक्रम की अध्यक्षता जिलाध्यक्ष योगेश यादव तथा संचालन विधानसभा अध्यक्ष मोहम्मद शकील इस्माइल ने किया।

कोटेदार बेंच रहा था खाद्यान्न वाहन सहित व्यापारी पकड़ाया

अखंड भारत संदेश

पुलिस ने लिया कस्टडी में,ग्राम प्रधान व ग्रामीणों ने उच्चाधिकारियों से की शिकायत, तहसील व आपूर्ति कार्यालय के अधिकारी बचाने में जुटे

कोटेदार अल्हवा कोराव द्वारा खाद्यान्न चोरी में रात को कालाबाजारी करते हुए पकड़ी गई पिकप वाहन

कोरांव। कोरांव तहसील के ग्राम पंचायत अल्हवा के कोटेदार द्वारा पात्र गृहस्थी आदि का खाद्यान्न काला बाजारी करते हुए ग्रामीणों ने रात सात बजे करीब मह वाहन सहित धर दबोचा। और पुलिस को सुपुर्द कर दिया। बता दें कि कोटेदार अल्हवा लाल बहादुर पाल खाद्यान्न सोलह बोरा एक पिकप वाहन से लदवा कर बेच रहा था कि मौके पर ग्रामीणों ने धर दबोचा। और ग्रामीणों ने ग्राम प्रधान को सूचित किया,और प्रधान ने तत्काल एस डी एम कोरांव,इंस्पेक्टर,ए डी एम सप्लाई प्रयागराज, जिला पूर्ति अधिकारी प्रयागराज, आपूर्ति अधिकारी कोरांव आदि को सूचित किया।पुलिस कोराव द्वारा खाद्यान्न और पिकप वाहन व्यापारी सहित थाना कोरांव में सुपर्द कर दिया। कोटेदार मौके से भाग गया। इसके पूर्व भी वर्ष 2018 में पिकप वाहन सहित कोटेदार पकड़ा गया था। और जेल गया था। कामिस्नरी से स्टे लिया था। इसके बावजूद सुधार लाया नहीं। चर्चा है की कोटेदार तहसील आपूर्ति अधिकारियों को मिलाने में लगा है। इस बाबत अपर जिलाधिकारी नागरिक आपूर्ति प्रयागराज जितेंद्र प्रसाद ने बताया कि कोटेदार को बख्शा नहीं जाएगा।

कार्यालय ग्राम पंचायत देवरी बेनी
विकास खण्ड शंकरगढ़, प्रयागराज

पत्रांक मेमो 04.10.2021

अल्पकालीन निविदा 2021–22

वित्तीय वर्ष 2021–22 में मनरेगा/राज्य वित्त/15वां वित्त योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित निर्माण कार्यो को कराने/सामग्री आपूर्ति हेतु ग्राम पंचायत देवरी बेनी में पंजीकृत ठेकेदारों सामग्री आपूर्तिकर्ताओं से निविदाएं सील बन्द लिफाफे में अद्योहस्ताक्षरी के कार्यालय में दिनांक 5.10.2021 से 08.10.2021 को दोपहर 2 बजे तक आमंत्रित की जाती है। दिनांक 08.10.2021 को दोपहर 3 बजे गठित समिति के समक्ष निविदा खोला जायेगा नियम व शर्तें किसी भी समय कार्यालय में कार्य दिवस में देखी जा सकती है।

संख्या	मद योजना का नाम	कार्य का नाम	कार्य की लागत (लाख में)	निविदा मूल्य
1	मनरेगा	काली रोड से सरदार के घर के पास तक इण्टलाकिंग सड़क का निर्माण (अनुमानित ल. 100मीटर)	3.98 लाख	500रू.

दिनेश
(ग्राम प्रधान)
ग्राम पंचायत देवरी बेनी
विकास खण्ड शंकरगढ़, प्रयागराज

शशिकान्त पटेल
ग्राम विकास अधिकारी
ग्राम पंचायत देवरी बेनी
विकास खण्ड शंकरगढ़, प्रयागराज

कार्यालय ग्राम पंचायत भड़िवार
विकास खण्ड शंकरगढ़, प्रयागराज

पत्रांक मेमो 04.10.2021

अल्पकालीन निविदा 2021–22

वित्तीय वर्ष 2021–22 में मनरेगा/राज्य वित्त/15वां वित्त योजना के अन्तर्गत निम्नलिखित निर्माण कार्यो को कराने/सामग्री आपूर्ति हेतु ग्राम पंचायत भड़िवार में पंजीकृत ठेकेदारों सामग्री आपूर्तिकर्ताओं से निविदाएं सील बन्द लिफाफे में अद्योहस्ताक्षरी के कार्यालय में दिनांक 5.10.2021 से 08.10.2021 को दोपहर 2 बजे तक आमंत्रित की जाती है। दिनांक 08.10.2021 को दोपहर 3 बजे गठित समिति के समक्ष निविदा खोला जायेगा नियम व शर्तें किसी भी समय कार्यालय में कार्य दिवस में देखी जा सकती है।

संख्या	मद योजना का नाम	कार्य का नाम	कार्य की लागत (लाख में)	निविदा मूल्य
1	मनरेगा	पंचायत भवन के पास खेल मैदान का नव निर्माण एवं मिट्टी पटाई का कार्य	14.47 लाख	500रू.

विमला देवी
(ग्राम प्रधान)
ग्राम पंचायत भड़िवार
विकास खण्ड शंकरगढ़, प्रयागराज

शशिकान्त पटेल
ग्राम विकास अधिकारी
ग्राम पंचायत भड़िवार
विकास खण्ड शंकरगढ़, प्रयागराज

जसरा में लगा रहा भीषण जाम, घंटो यात्री रहे हलाकान

जसरा। सोमवार को सुबह जाम का एक कारण मंत्रियों का काफिला रहा। बताते चलें कि केन्द्रीय राज्यमंत्री अनुप्रिया पटेल की माता जी का चित्रकूट में तेरहवीं होने के कारण उसमें शामिल होने के लिए उनका काफिला निकला। वहीं पंचायती राज मंत्री भूपेन्द्र सिंह चौधरी, कैबिनेट मंत्री सिद्धार्थ नाथ सिंह सहित आधा दर्जन विधायकों के भी वाहनों को जाम से गुजरना पड़ा। जसरा बाजार सहित आस पास के लोगों का कहना है कि कब तक फाटक पर ऐसे ही घंटो खड़ा रहना पड़ेगा। जब कि हर जगह रेलवे फाटक पर ओवर ब्रिज बन गया है। लेकिन जसरा का रेलवे फाटक के जाम के झाम से पता नहीं कब छुटकारा मिलेगा। इसके लिए जनता सांसद और विधायक पर भड़ास निकाल रही है।

जिला मुख्यालय पर आयोजित कार्यक्रम में शामिल होने जा रहे सपाइयों की पुलिस ने किया गिरफ्तार

भाजपा सरकार में किसानों गरीबो का गला घोटा जा रहा है : नरेन्द्र सिंह

गिरफतारी के दौरान विरोध करते सपा नेता नरेन्द्र सिंह

मेजा। जिला मुख्यालय पर आयोजिक कार्यक्रम में शामिल होने जा रहे सपाइयों को एहतिहात के तौर मेजारोड पटेल चैराहे पर मेजा पुलिस ने हिरासत में लिया। इस दौरान सपा के वरिष्ठ नेता एवं पूर्व प्रदेश सचिव नरेन्द्र सिंह ने गिरफतारी के बाद भाजपा सरकार के विरोध में जमकर नारेबाजी करते हुए कहा कि वर्तमान सरकार में गरीबो, किसानों एवं मजलूमों का गला घोटा जा रहा है। कोतवाल मेजा अरूण कुमार चतुवेर्दी के नेतृत्व में मेजा पुलिस ने नगर की ओर कूंच कर रहे सपाइयों को हिरासत में लेकर मेजा रोड पुलिस चैकी पर नजरबंद कर दिया। गौरतलब है कि सपा के पूर्व प्रदेश सचिव नरेन्द्र सिंह, पूर्व ब्लाक प्रमुख माण्डा संजय यादव उर्फ कल्लू, देवेन्द्र सिंह तथा पूर्व छात्रसंघ अध्यक्ष राहुल की गिरफतारी के बाद सपा के वरिष्ठ नेता नरेन्द्र सिंह ने भाजपा सरकार को कोसते हुए जमकर नारेबाजी जमकर नारेबाजी किया और कहा कि भाजपा शासनकाल में जहां गरीबों, किसानों, मजलूमों का गला घोटा जा रहा है।

जिला कार्यक्रम में शामिल होने जा रहे सपा नेता को किया गया गिरफ्तार

मेजा। मेजा विधान सभा के सपा नेता व पूर्व प्रदेश सचिव नरेंद्र सिंह, पूर्व ब्लाक प्रमुख मांडा संजय यादव उर्फ कल्लू को प्रयागराज में आयोजित कार्यक्रम में शामिल होने जाते समय मेजा पुलिस ने एहतियात के तौर पर हिरासत मे ले लिया। गौरतलब हो कि लखीमपुर में हुए बवाल के मद्देनजर सपा मुखिया के लखनऊ आवास से हुई गिरफ्तारी के पश्चात समूचे प्रदेश में सोमवार सुबह से ही सियासी पारा चढ़ने लगा। ऐसे में समूचे प्रदेश में एहतियात बरतने के उदेश्य से सपा, बसपा व कांग्रेसी राजनैतिकों को रोकने के लिए कोतवाल मेजा अरुण चतुवेर्दी के नेतृत्व मे मेजारोड पुलिस चौकी प्रभारी पंकज कुमार त्रिपाठी ने नगर की ओर कूंच कर रहे सपाइयों को हिरासत मे लेकर चौकी पर नजरबंद कर दिया। कहीं कोई बवाल न हो इसके लिए सुबह से ही मेजा पुलिस सड़कों पर संदिग्ध वाहनों की चेकिंग कर रही है। कोतवाल मेजा अरुण चतुवेर्दी, मेजारोड पुलिस चौकी प्रभारी पंकज कुमार त्रिपाठी, दरोगा अतुल मिश्रा, दरोगा सूर्य प्रकाश सिंह ने पुलिस टीम के साथ मुस्तैद हैं।

कांग्रेसियों ने करछना तहसील पर किया प्रदर्शन

करछना। कांग्रेस के जिला अध्यक्ष सूरज शुक्ल के नेतृत्व में तहसील करछना में प्रियंका गांधी के साथ पुलिस पुलिस कर्मियों द्वारा की गई बदसलूकी और अमानवीय व्यवहार और किसानों से मिलने लखीमपुर खीरी जा रही थी प्रशासन के द्वारा भाजपा सरकार ने उनको रोकने का काम किया है इस तरह से लोकतंत्र और संविधान को तार-तार करने का काम भाजपा सरकार ने किया है। यूथ कांग्रेस नेता डी पी तिवारी ने कहा प्रियका गांधी को पुलिस द्वारा नही रोका जा सकता गांधी जी के रास्ते पर चल कर इस देश में लोकतंत्र को बचाने के लिए हम युवाओं को आगे आना पड़ेगा उपस्थित युवक कांग्रेस नेता सहजादुल ने कहा प्रमुख रूप से सूरज शुक्ला डीपी त्रिपाठी सहजादूल हक रंगराज सिंह सुरेश पटेल सत्यम सिंह अंकुर तिवारी शिवम तिवारीब्रह्मदेव शुक्ला शिवम यादव राजा यादव मंगला प्रसाद अमन नरेंद्र यादव नरेंद्र आदिवासी बंटू यादव असद सिद्दकी नागेश कुमार नागेंद्र कुमार ब्रह्म देव शुक्ला अनिल पांडे आदि रहे।

करछना में नव निर्वाचित प्रधानो का दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम संपन्न

अखंड भारत संदेश

ब्लाक प्रमुख प्रतिनिधि कमलेश द्विवेदी प्रधानो को प्रमाण पत्र वितरित करते

करछना ब्लाक मुख्यालय पर दो दिवसीय नव निर्वाचित प्रधानो को प्रशिक्षण के उपरांत सम्मानित किए गए हिन्दूपुर के प्रधान मुख्तार अहमद।

करछना विकास खंड में प्रशिक्षण कार्यक्रम के उपरांत सम्मानित किए गए रामगढ़ प्रधान कमला कांत

करछना में निर्वाचित प्रधानो के दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम में सम्मानित किए गए बबुरा प्रधान निर्मल कुमार सिंह।

करछना। करछना विकास खंड करछना के ग्राम पंचायतों से निर्वाचित प्रधानो को गांवो में कराये जाने वाले विकास कार्यों को लेकर दो दिवसीय प्रशिक्षण कार्यक्रम संपन्न हुआ ब्लाक मुख्यालय पर मीटिंग हाल में प्रशिक्षण दिया गया । इस कार्यक्रम में सबसे पहले माँ सरस्वती की मूर्ति पर दीप प्रज्वलित कर कार्यक्रम की सुरुआत की, और उपस्थित महिला व पुरुष ग्राम प्रधानो को खंड विकास अधिकारी करछना जितेन्द्र कुमार, ब्लाक प्रमुख प्रतिनिधि कमलेश द्विवेदी, एडीओ पंचायत विवेक कुमार मिश्रा,पूर्व प्रमुख विजय राज सिंह उर्फ राजू सिंह मुख्तार अहमद प्रधान अल्प नारायण सिंह अध्यक्ष उत्तर प्रदेश लेखा परीक्षा एसोसिएशन के अध्यक्ष, डाक्टर ऋचा, डाक्टर गिरधारी लाल, डॉ शैनिष समसेन, खंड शिक्षा अधिकारी संतोष कुमार श्रीवास्तव, निमिष पांडेय, प्रमोद कुमार मिश्रा । नें निर्वाचित प्रधानो को उनके दायित्व को लेकर गांवो में कराये जाने वाले विकास कार्यों के विषय पर विस्तार से चर्चा कर जानकारी दी ।इस मौके पर एडीओ आई एस बी रामेश्वरम प्रसाद सिंह अतुल कुमार मिश्रा खंड प्रेरक, दुष्यंत प्रताप सिंह, मोहम्मद फिरोज, रवि शंकर, अरविंद कुमार, समर सिंह, संजय यादव ब्लाक कर्मी एवं बडी संख्या में प्रधान व प्रतिनिधि मौजूद थे ।

कार्यालय ग्राम पंचायत मड़वा करछना प्रयागराज
टेण्डर/कोटेशन

मनरेगा/चतुर्थ राज्य वित्त/14वां/15वां वित्त योजनाअन्तर्गत ग्राम पंचायत मड़वा विकास खण्ड करछना में अद्योलिखित कार्यो के आगणन /प्राकलन के अनुसार यथा आवश्यक मात्रा में सामग्री कार्य स्थल पर आपूर्ति भाड़ा सहित पहुंचाकर आपूर्ति हेतु आपूर्तिकर्ता से सील बन्द लिफाफे में टेन्डर/कोटेशन अद्योहस्ताक्षरी के कार्यालय में दिनांक 02–11–2020 से दिनांक 03–11–2020 को अपराह्न 3 बजे तक आमंत्रित किया जाता है। उक्त तिथि के बाद प्राप्त किसी भी टेन्डर/कोटेशन पर विचार नहीं किया जायेगा आपूर्तिकर्ता अपना कोटेशन/टेन्डर उक्त तिथि तक जमा कर सकते हैं नियम व शर्तें किसी भी समय कार्यालय कार्यदिवस में देखी जा सकती है तथा टेन्डर फार्म की बिक्री उक्त अवधि में कार्यालय समय 10 से 12 बजे तक प्रत्येक कार्यदिवस पर की जायेगी। किसी एक व समस्त टेन्डर/कोटेशन को निरस्त करने का अधिकार ग्राम पंचायत मड़वा में निहित होगा। टेन्डर/कोटेशन दिनांक 11–11–2020 को अपराह्न 4 बजे पूर्व निर्धारित कमेटी के समक्ष खोला जायेगा। टेन्डर/कोटेशन फार्म कार्यालय में ग्राम पंचायत विकास अधिकारी के पास दिनांक 11–11–2020 कार्यालय अवधि में समय 3.30 अपराह्न तक जमा किया जा सकता है। निम्नलिखित कार्य पर पर जिस–जिस सामग्री की आवश्यकता है उसका विवरण कार्यलय/नोटिस बोर्ड पर चस्पा है उत्तर प्रदेश माल एवं सेवाकर अधिनियम के अन्तर्गत अनुमन्य जी.एस.टी. का भुगतान किया जायेगा। जिसके जमा करने का दायित्व आपूर्तिकर्ता का होगा साथ ही जी.एस.टी जमा चालान की आपूर्तिकर्ता द्वारा स्वप्रमाणित प्रति भुगतान के एक माह के अन्दर अपरिहार्य रूप से जमा करना होगा उसके उपरान्त ही अगला भुगतान किया जायेगा उस भुगतान पर ही उक्त नियम व शर्तें लागू रहेगी। इसके विपरीत स्थिति पाने पर भविष्य के उक्त फर्म को काली सूची में डालने हेतु यथोचित विधिक कार्यवाही कर दी जायेगी।

क्र0	कार्य का नाम	अनुमानित लागत (लाख में) सामग्री अंश	सामग्री अंश आपूर्ति की अवधि
1.	चन्द्रबली के घर से राम ललक के घर तक इण्टरलाकिंग निर्माण कार्य	1.99 लाख	2 माह
2.	राम ललक के घर से सहदेव के घर तक इण्टरलाकिंग निर्माण कार्य	1.99 लाख	2 माह

राजित राम
ग्राम प्रधान
ग्राम पंचायत मड़वा
करछना प्रयागराज।

पत्रांकः मेमो/ग्रा0 पं0 सचिव/
टेण्डर/कोटेशन/2020–21/दिनांक

अब्दुल वारी
ग्राम पंचायत विकास अधिकारी
ग्राम पंचायत मड़वा
करछना प्रयागराज।

प्रतापगढ़ संदेश

अखिलेश यादव की गिरफ्तारी के विरोध में सपाईयों ने दिया धरना

राष्ट्रपति को सम्बोधित ज्ञापन भेजा गया

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। लखीमपुर खीरी में किसानों की हत्या के विरोध में सोमवार को समाजवादी पार्टी के कार्यकर्ताओं ने अम्बेडकर चौराहे पर प्रदर्शन किया और सरकार के विरोध में नारेबाजी की। कार्यकर्ताओं ने कहा कि जब तक पूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव को रिहा नहीं किया जाता, तब तक हम लोग यहां से नहीं हटेंगे।

जिला अध्यक्ष छविनाथ यादव ने कहा कि यह किसान विरोधी तीन काला कानून को हटाओ और जो किसान की हत्या कर रहे हैं

उनको सजा दो नहीं तो अभी या तो अंगड़ाई है आगे और लड़ाई है। उन्होंने कहा कि लखीमपुर खीरी में जिस तरह किसानों के ऊपर केंद्रीय गृह राज्य मंत्री के बेटे ने किसानों के ऊपर गाड़ी चढ़ाकर चार किसान की हत्या कर दी, यह बेहद निंदनीय है। ऐसे मंत्री को स्वतः संज्ञान लेकर उचित कार्यवाही करने की कृपा करें जिस तरह विपक्ष के नेताओं को पीड़ित परिवार से ना मिलने देना लोकतंत्र की हत्या है। उन्होंने कहा कि उत्तर प्रदेश के पूर्व मुख्यमंत्री अखिलेश यादव को जिस तरह उनको उनके घर में कैद करना। साथ ही साथ पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार करके संविधान की पूरी तरह से हत्या की है। इस दौरान राष्ट्रपति को सम्बोधित ज्ञापन भी सौंपा गया। इस मौके पर महासचिव अब्दुल कादिर जिलानी, जगदीश मौर्य, राहुल सिंह, संतोष यादव, मुनन यादव, संजय पांडे ,शांति सिंह, महिमा गुप्ता, सुषमा पाल, शबनम, शकील अहमद, श्याद अली, नरेंद्र पाल एडवोकेट, वासिक खान, इंद्र देव तिवारी, शहरे आलम इरशाद सिद्दीकी, मीडिया प्रभारी वकार अहमद आदि मौजूद रहे।

सिमरन को हराकर सर्वेश बने प्रमुख, प्रदीप निर्विरोध

अभय, ईशा ने जीता क्लास प्रमुख का चुनाव, गहमा गहमी और कड़ी सुरक्षा के बीच हुआ मिडिल स्कूल जोगापुर का चुनाव

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। लोकतंत्र को समझने के लिए चुनाव प्रक्रिया तंत्र का जानना बहुत ही आवश्यक है। बच्चों को लोकतंत्र के अधिकार को करीब से समझाने के लिए जोगापुर मिडिल स्कूल में अनूठा प्रयोग किया गया। जिसके लिए स्कूल के हेड मॉनिटर और क्लास मॉनिटरों (प्रमुखों) का चुनाव कराया गया। जिसमें सर्वाधिक वोट (39) पाकर सर्वेश सरोज स्कूल प्रमुख पद के लिए विजयी घोषित किये गये।

उन्होंने निकटतम प्रतिद्वंद्वी सिमरन प्रजापति को 33 वोट से हराया। क्लास प्रमुख 6 के चुनाव में अभय ने 15 वोट पाकर जीत दर्ज कराई। इन्होंने जय प्रकाश को 12 वोट से हराया। क्लास 7 के लिए हुये प्रमुख चुनाव में ईशा वर्मा को 11 उनकी प्रतिद्वंद्वी वैष्णवी को 4 वोट मिले। क्लास आठ के लिये प्रदीप सरोज निर्विरोध प्रमुख हो गये। चुनाव में कुल 62 वोटर थे। एक को दो वोट डालना था जिसमें 106 वोट डाले गये। 18 वोट अनधिकृत हुये। हेडमास्टर कौशिल्या यादव और चुनाव संयोजक सहायक अध्यापक राजेश कुमार ने विजयी उम्मीदवारों को प्रणाम पत्र दिया। शिवा अपनी फ़ोर्स के डटे रहे। इस अवसर पर विद्यालय के स्टाफ ने बच्चों के हुनर की तारीफ की। बाल चुनाव की प्रक्रिया और तामझाम असली चुनाव से कमतर नहीं था। रिचा दूबे, पायल, रियापाल, प्रीति मतदान कर्मी, अंजू वर्मा सेक्टर मजिस्ट्रेट, मुस्कान मुख्य चुनाव अधिकारी की भूमिका में नजर आई।

पानी की जल निकासी न होने से पचासों एकड़ धान की फसल डूबी

ग्रामीणों ने डीएम से जल निकासी व्यवस्था की उठाई मांग

परियावां। विकास खण्ड कालाकांकर क्षेत्र के झोकवारा ग्राम पंचायत एवं आस पास की अन्य ग्राम पंचायतों में स्थित रेवली नाला सफाई न होने के चलते पचासो एकड़ की धान की फसल सड़ रही है। विगत दिवस बारिश के चलते नाला बारिश के पूर्व सफाई न कराए जाने के चलते 50 एकड़ धान की फसल जल मगन होकर सड रही है।

बता दें कि उक्त नाले में रायबरेली जनपद के ऊंचाहार तथा रोहनिया ब्लॉक के कई गांव का वारिश पानी इसी नाले से निकलता है जिसके चलते काला काकर विकासखंड के दर्जनों गांव टापू बन कर रह गए हैं लोगों का खेती बारी के साथ आवागमन भी बाधित है, जिससे आसपास के गांव के लोगों के लिए सरदर्द बन गया है। बता दे उक्त नाला की लंबाई लगभग 20-25 किलोमीटर है, जो आगे चलकर दूअर नदी में मिलता है। यह नाला कालाकांकर ब्लाक के विभिन्न गांवों के अलावा कुंडा ब्लॉक के कई गांवों को भी प्रभावित कर रहा है। झोकवारा गांव के करीब पचासों एकड़ उपजाऊ जमीन पर पानी भरा हुआ है। इससे नाले से संबंधित ग्रामीण जनों ने मुख्यमंत्री, जिला अधिकारी मुख्य विकास अधिकारी सहित उच्च अधिकारियों का ध्यान आकृष्ट कराते हुए प्रार्थना पत्र देते हुए जल निकासी की मांग किया है।

सरियापुर के ग्राम प्रधान को मारी गोली, प्रयागराज रेफर

ग्रामीणों ने एक घंटे तक जाम रखा कुण्डा मार्ग

अखंड भारत संदेश

जेठवारा, प्रतापगढ़। जेठवारा थाना के सरियापुर ग्राम प्रधान को बेखौफ बदमाशों ने गोली मार दी जिससे वह घायल हो गये। आनन-फानन में लोग इलाज के लिये जिला अस्पताल ले गये जहां से हालत गंभीर होने पर उन्हें प्रयागराज रेफर कर दिया गया। इस घटना के विरोध में ग्रामीणों ने राइस मिल के सामने जाम लगा दिया। लगभग एक घंटे तक कुण्डा मार्ग जाम रहने पर बाघराय व जेठवारा की पुलिस वहां पहुंच गई थी लेकिन घायल प्रधान के प्रयागराज पहुंच जाने पर लोगों ने जाम हटा दिया। जानकारी के मुताबिक जेठवारा थाना क्षेत्र के सरियापुर ग्राम प्रधान राजकुमार यादव अपने घर से खाना खाकर राइस मिल पर जा रहे थे तभी पीछे से आए बेखौफ बदमाशों ने उन पर गोली चला दी जिससे वह घायल हो गये। आसपास के लोग जब तक पहुंचते, तब तक बदमाश भाग चुके थे। बता दें कि राजकुमार यादव सपा नेता जिला पंचायत सदस्य महेंद्र यादव के भाई हैं। जानकारी पर एएसपी पश्चिमी रोहित मिश्रा समेत भारी पुलिस बल अस्पताल में पहुंचे।

ट्रेन की चपेट में आने से किशोर की दर्दनाक मौत

अखंड भारत संदेश

परियावां, प्रतापगढ़। प्रयागराज लखनऊ रेलवे ट्रैक पर सोमवार की सुबह लगभग सवा सात बजे लखनऊ को जा रही गंगा गोमती एक्सप्रेस ट्रेन की चपेट में आने से किशोर की दर्दनाक मौत हो गई। बताया जाता है नवाबगंज थाना क्षेत्र के मिश्रपुर के मजरे हसनपुर निवासी संदीप पुत्र हरकेश गौतम (17) वर्षीय गांव के सामने रेलवे ट्रैक पर बैठकर मोबाइल में गेम खेल रहा था कि अचानक सामने से लखनऊ को जा रही गंगागोमती एक्सप्रेस ट्रेन की चपेट में आ गया जिससे मौके पर संदीप की मौत हो गई। घटना स्थल पर पहुची मृतक की माँ ममता का रो-रोकर बुरा हाल है। ग्राम प्रधान प्रतिनिधि गुड्डू ओझा मौके पर पहुंचे और परिजनों को किसी तरह ढांढस बधाया। सूचना पर पहुंची आरपीएफ ऊंचाहार पुलिस ने घटना को अपने कार्य क्षेत्र से बाहर बताया। मामले की जानकारी होने पर थाना प्रभारी रुकुमपाल सिह ने उपनिरीक्षक एस करण यादव को मौके पर भेजा। पुलिस ने शव की लिखा पढ़ी कर अपने कब्जे में लेकर पीएम के लिए भेजा।

शहीद योगेश की अंतिम विदाई में उमड़ा जनसैलाब, नम आंखों से दी विदाई

विधायक ने शहीद पथ एवं स्मृति द्वार निर्माण की किया घोषणा

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। लक्ष्मणपुर विकास खण्ड के बलीपुर परसन गांव के योगेश तिवारी वायु सेना में लेफ्टिनेंट कमांडर के पद पर उत्तराखण्ड में तैनात थे, जहां कर्तव्य निर्वहन के दौरान वह शहीद हो गए। शव के पैतृक गांव पहुंचते ही कोहराम मच गया। उनके अंतिम दर्शन के लिए पूरा क्षेत्र उमड़ पड़ा।

शहीद को अंतिम विदाई देने के लिए जिले के जनप्रतिनिधि व अधिकारी भी मौके पर पहुंचे। विधायक डॉक्टर आरके वर्मा, सांसद संगम लाल गुप्ता, जिलाधिकारी डा0 नितिन बसंल सहित दर्जनों गणमान्य लोग उपस्थित रहे। प्रतापगढ़ प्रशासन के आला अधिकारी भी व्यवस्था सम्हालते दिखे। शहीद योगेश

तिवारी के पार्थिव शरीर को अंतिम संस्कार के लिए श्रृंगबेरपुर के लिए रवाना किया गया तो सैकड़ों की भीड़ साथ चल पड़ी। विधायक डॉ आर के वर्मा और सांसद संगमलाल गुप्ता ने शासन की ओर से शहीद योगेश तिवारी की माँ को पचास लाख का सांकेतिक चेक दिया। डॉ आर के वर्मा ने मुख्य मार्ग से शहीद योगेश के घर तक सम्पर्क मार्ग व शहीद योगेश तिवारी के नाम पर स्मृति द्वार बनवाने की घोषणा किया। विधायक ने कहा कि हर दुःख सुख में शहीद परिवार के साथ खड़ा रहूंगा।

प्रियंका गांधी की गिरफ्तारी के विरोध में कांग्रेसियों ने किया प्रदर्शन, पांच सूत्रीय ज्ञापन एसडीएम सदर को सौंपा

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। उत्तर प्रदेश कांग्रेस के निर्देश पर कांग्रेस महासचिव प्रियंका गांधी की सीतापुर में गिरफ्तारी के विरोध में जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष डॉ0 लालजी त्रिपाठी के नेतृत्व में अंबेडकर चौराहे पर धरना प्रदर्शन करने के दौरान उप जिलाधिकारी सदर को पांच सूत्रीय मांग पत्र सौंपा गया।

मांग पत्र सौंपने के उपरांत एक बैठक जिला कांग्रेस कार्यालय पर संपन्न हुई। बैठक की अध्यक्षता जिला कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष डॉ लालजी त्रिपाठी एवं संचालन शहर कांग्रेस कमेटी के अध्यक्ष इरफान अली ने किया। अध्यक्षता कर रहे जिलाध्यक्ष डॉ. लालजी त्रिपाठी ने कहा कि जनपद लखीमपुर खीरी में किसान संगठन कृषि कानून का विरोध कर रहे थे। किसानों पर उत्तर प्रदेश के उपमुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य व केंद्रीय मंत्री अजय

मिश्र टेनी के काफिले से कुचलकर घटनास्थल पर ही किसानों की मौत हो गई। जानकारी होने पर कांग्रेस महासचिव उत्तर प्रदेश प्रभारी प्रियंका गांधी को लखीमपुर जाते समय रास्ते में ही पुलिस प्रशासन द्वारा गिरफ्तार कर लिया गया जिसके विरोध में पूरे प्रदेश में धरना प्रदर्शन एवं आंदोलन हो रहा है। सदर प्रत्याशी डॉक्टर नीरज त्रिपाठी ने कहा कि किसान भाइयों जिनकी मौत हुई है उनके परिवार दुख बाटने एवं संवेदना व्यक्त करने उनके घर जा रही थी। प्रदेश सरकार विपक्ष की आवाज दबाना चाहती है। धरना प्रदर्शन में कांग्रेस सेवादल के जिला अध्यक्ष महेंद्र शुक्ला, विजय शंकर त्रिपाठी, प्रदेश सचिव प्रेम शंकर द्विवेदी, कांग्रेस उपाध्यक्ष डॉ बीके सिंह,वेदांत तिवारी, आशुतोष तिवारी, मकरंद शुक्ला, बृजेंद्र मिश्रा आदि मौजूद रहे।

अनियमित बिजली कटौती से लोग हुए बेहाल

पट्टी, प्रतापगढ़। अघोषित बिजली कटौती से ग्रामीण क्षेत्रों का हाल बेहाल हो चुका है, बिना किसी पूर्व सूचना और नियम के अघोषित बिजली कटौती से लोग परेशान हो रहे है। पट्टी विद्युत उपकेंद्र से जुड़े हुए दर्जनों गांव सोमवार को लोग बेहाल रहे सुबह से विद्युत कटौती दोपहर बाद तक जारी रही। पट्टी तहसील की विद्युत केंद्र से जुड़े क्षेत्र के सोनबरसा, नारंगपुर, दुबौली, पहलमापुर, मरियमपुर, छतेड़ी, सिरनाथपुर सहित दर्जनों गांव सोमवार को अघोषित विद्युत कटौती से उबल पड़े। दिन भर उमस भरी गर्मी से लोग तड़पते हुए दिखाई दिए ग्रामीणों का कहना है कि आए दिन इस तरह से विद्युत महकमे ने बिना किसी पूर्व सूचना के विद्युत कटौती होने से लोग परेशान हो जाते हैं कभी कभी रात के समय में बिजली काट दी जाती है और लोग परेशान हो जाते हैं।

प्रतापगढ़ शहर में तूफानी वर्षा का कहर

मुख्य मार्गों पर गिरा पेड़, विद्युत आपूर्ति ठप, नपा ने मुख्य मार्गों को जेसीबी लगाकर किया बहाल

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ। रविवार की आधी रात शहर में भयंकर तूफान व वर्षा का ताण्डव देखने को मिला। सैकड़ों पेड़ व बिजली के खंभे मुख्य मार्गों पर गिर गये। घरों में लगे टीन छप्पर उड़ गये। कटरा रोड, रोडवेज, कम्पनी गार्डेन क्षेत्र में बिजली के खंभे व तार टूटने से रविवार की रात गई बिजली सोमवार की अपरान्ह तक नहीं आई थी।

वैसे पूरे शहर में जगह-जगह तार टूटने से विद्युत आपूर्ति सुबह दस बजे के बाद कुछ क्षेत्रों में आई लेकिन दिन भर बिजली का आना-जाना बना रहा।

सबसे ज्यादा दिक्कत दहिलामऊ विद्युत उपकेन्द्र के उपभोक्ताओं को झेलनी पड़ी। शहर में आईटीआई, डीएम आवास के सामने, बस स्टेशन के पास, कम्पनी गार्डेन, प्रधान डाकघर के सामने गिरे पेड़ों को दिन भर काटकर अलग करने में कर्मचारी जुटे रहे। नगर पालिका के कर्मचारी कटरा रोड, डीएम

आवास के सामने, अम्बेडकर चौराहा से कम्पनी गार्डेन के दोनों तरफ जेसीबी लगाकर डालों व पेड़ के अवशेषों को हटाते रहे। यह जानकारी देते हुए सफाई निरीक्षक संतोष कुमार सिंह ने बताया कि सोमवार की भोर में जैसे ही तूफान थमा है, नगर पालिका के कर्मचारी अध्यक्षा प्रेमलता सिंह व अधिशाषी अधिकारी मुदित सिंह का निर्देश लेकर पेड़ों को काटने में जुट गये। शाम तक मुख्य मार्गों से गिरे पेड़ को हटा दिया गया था। प्रयागराज-फैजाबाद मार्ग पर भुपियामऊ के पास पेड़ गिरने से घंटों जाम लगा रहा। ट्रकों व बसों की लाइन लगी हुई थी। सोमवार की सुबह बिजली बंद होने से लोगों को पानी का संकट झेलना पड़ा।

किसानों की हत्या को प्रमोद व मोना ने बताया सरकारी अहंकार

अखंड भारत संदेश

लालगंज, प्रतापगढ़। केन्द्रीय कांग्रेस वर्किंग कमेटी के सदस्य प्रमोद तिवारी ने लखीमपुर खीरी मे किसानों की जघन्य हत्या को लोकतंत्र मे सरकारी अहंकार की पराकाष्ठा करार दिया है। वहीं उन्होनें लखीमपुर खीरी के मृतक किसानों के पीडितो से मिलने जा रही पार्टी महासचिव प्रियंका गांधी को जबरिया हिरासत मे लिये जाने की प्रदेश सरकार की कार्रवाई को लोकतंत्र की निर्मम हत्या ठहराते हुए कहा कि देश की जनता सरकार की इस जुल्म और ज्यादती को लेकर अब मूकदर्शक नही बनी रहेगी बल्कि बकौल प्रमोद तिवारी सही वक्त पर जनता इसका माकूल जबाब देगी। कांग्रेस विधानमण्डल दल की नेता एवं क्षेत्रीय विधायक आराधना मिश्रा मोना ने सरकार का पूरी तरह से अलोकतांत्रिक एवं असंवैधानिक तरीका ठहराया। सीएलपी नेता मोना ने कहा कि घटना की रात से ही उनको हाउस अरेस्ट कर प्रियंका गांधी से सीतापुर मे न मिलने देने की सरकार की कार्रवाई पूरी तरह से कानून व संविधान की मर्यादा के खिलाफ है। सोमवार को प्रमोद तिवारी तथा विधायक मोना का संयुक्त बयान मीडिया प्रभारी ज्ञानप्रकाश शुक्ल ने यहां जारी किया है।

पुरानी पेंशन लिये बिना चुप नहीं बैठेगी यूनियनः विद्यानाथ

निजीकरण का विरोध करती रहेगी मजदूर यूनियन

अखंड भारत संदेश

प्रतापगढ़। उत्तरीय रेलवे मजदूर यूनियन पुरानी पेंशन लागू करने की अपनी मांग पर अडिग है। उसे लिए बिना मानेगी नहीं। यूनियन सरकार की मजदूर नीतियों के खिलाफ संघर्ष में है। सोमवार को प्रतापगढ़ की ब्रांच काउंसिल में बतौर मुख्य अतिथि भाग लेने आये उत्तरीय रेलवे मजदूर यूनियन लखनऊ के मंडल मंत्री विद्यानाथ यादव ने पत्रकारवार्ता में यह दावा किया।

उन्होंने कहा कि सरकार पर्दे के पीछे जो खेल खेल रही है।

वह किसी से छिपा नहीं है। उन्होंने मजदूर यूनियन के साथियों से इस संघर्ष में साथ देने की अपील की। कहा कि गुणी व्यक्ति का सम्मान होना चाहिये। पुरानी पेंशन और निजीकरण को लेकर मंडल मंत्री ने सरकार को आड़े हाथों लिया। ब्रांच काउंसिल में उन्होंने कर्मचारियों की समस्याओ के बारे में जानकारी ली। कहा कि उनके हितों की अनदेखी नहीं होने पायेगी। इस मौके पर मंडल मंत्री विद्या नाथ यादव, अध्यक्ष लखनऊ अवधेश दुबे, कार्यकारी अध्यक्ष आरपी राव, कोषाध्यक्ष टीएन पांडेय, सहायक मंडल मंत्री राजकिशोर दूबे, शाखा मंत्री लोको पिरथी पाल मिश्रा, शाखा उपाध्याय आरके श्रीवास्तव को प्रतापगढ़ ब्रांच की तरफ से अंगवस्त्र से सम्मानित किया गया। अध्यक्षता सचिव धर्मेंद्र दूबे ने किया। संचालन अध्यक्ष मोहम्मद अफजल खान ने किया। कार्यक्रम में पूर्व मंत्री आरबी सिन्हा,राजेश सिन्हा, राजकुमार सिन्हा, प्रदीप शर्मा, जेपी पांडेय समेत कई कर्मचारी और नेता सक्रिय रहे।

मुंबई से भगा कर लाई गई नाबालिग किशोरी को पुलिस ले गई थाने

अखंड भारत संदेश

पट्टी, प्रतापगढ़। छह दिन पहले मुंबई से भगा कर लाई गई नाबालिग किशोरी को सूचना पर पहुंची पुलिस थाने लेकर चली गई, वही आरोपित घर से फरार है। आरोपित युवक की मां को भी पुलिस साथ ले गई है। इलाके में मामले की चर्चा जोरों पर है। पट्टी कोतवाली क्षेत्र के बडारी गांव निवासी झगडू राम विश्वकर्मा का बेटा सूरज मुंबई के वसई विरार इलाके में मजदूरी करता था। वही पड़ोस में रह रही एक नाबालिग किशोरी से उसका प्रेम संबंध हो गया। उसे वहां से आरोपित 25 दिसंबर 2021 को भगाकर अपने गांव बडारी ले आया। गांव में किशोरी को देख पास पड़ोस के लोगों दंग रह गए। घटना की सूचना किसी ने पट्टी पुलिस को दे दी। जिस पर रविवार को पुलिस आरोपित के घर पहुंची और किशोरी व आरोपित की मां को कोतवाली लेकर चली गई। आरोपित युवक घर से फरार है। इस मामले में नाबालिग किशोरी के परिजनों ने मुंबई नालासोपारा थाने में आरोपित के खिलाफ नामजद मुकदमा पंजीकृत कराया है।

खबर संक्षेप

सपा और आम आदमी ने भी किया धरना प्रदर्शन

कौशांबी। लखीमपुर खीरी जनपद में किसानों की मौत के मामले को लेकर समाजवादी पार्टी के नेता और आम आदमी पार्टी के नेताओं ने भी धरना प्रदर्शन कर भाजपा सरकार का जमकर विरोध किया है इस दौरान धरना प्रदर्शन कर रहे नेताओं ने कहा कि भाजपा सरकार किसान विरोधी है और भाजपा सरकार के मंत्री और उनके पुत्र पर हत्या का मुकदमा दर्ज किया जाए किसानों को मुआवजा दिया जाए किसान आंदोलन को लेकर पूरे जिले में चप्पे-चप्पे पर पुलिस सुरक्षा व्यवस्था तैनात रहे।

रोजगार परक जागरूकता कार्यक्रम आयोजित

चायल कौशाम्बी। बडौदा स्वरोजगार विकास संस्थान मंझनपुर द्वारा रोजगार परक जागरूकता कार्यक्रम ग्राम सभा सुधवर में किया गया जिसमें संस्थान के कार्यालय सहायक परीक्षित मौर्य ने विभिन्न रोजगार परक कार्यक्रमों के बारे में बताया जिसमें सुअर पालन, बकरी पालन पशु पालन के प्रशिक्षण हेतु बेरोजगार युवाओं को स्वालंबन बनाने के लिए सूअर पालन के प्रशिक्षण हेतु प्रेरित किया गया संस्थान के वित्तीय साक्षरता ऋण परामर्शदाता ईश्वरी प्रसाद ने प्रधानमंत्री जनधन व मुद्रा योजना जैसी विभिन्न योजनाओं के बारे में बताया इस कार्यक्रम का संचालन मान सिंह के द्वारा कराया गया इस अवसर पर ग्राम सभा के तमाम लोग उपस्थित रहे।

अपर पुलिस अधीक्षक ने की जनसुनवाई

कौशाम्बी। अपर पुलिस अधीक्षक द्वारा पुलिस कार्यालय स्थित दुर्गा भाभी सभागार में जनसुनवाई की गयी इस दौरान आने वाले फरियादियों की समस्याओं को सुना गया तथा उनकी समस्याओं के शीघ्र गुणवत्तापूर्ण व समयबद्ध, निस्तारण हेतु सम्बन्धित को निर्देशित किया गया।

अवैध शराब के साथ अभियुक्त गिरफ्तार

कौशाम्बी। जिले में अवैध शराब के निर्माण व तस्करी के विरुद्ध चलाये जा रहे अभियान के क्रम में थाना सराय अकिल पुलिस द्वारा अभियुक्त अमन सिंह पुत्र नन्हू सिंह निवासी जगजीवनपुर सिमोरी थाना सुल्तानपुर घोस जनपद फतेहपुर हाल पता फकीराबाद के कब्जे से 20 शीशी अवैध शराब बरामद होने पर अभियुक्त को गिरफ्तार कर कार्यवाही के पश्चय अभियुक्त का चालान न्यायालय कर दिया है ।

कोरोना के दृष्टिगत की गई कार्यवाही

कौशाम्बी। सरकार के निर्गत निदेशौ के अनुपालन के क्रम में जिले में विभिन्न थानों द्वारा सघन चेकिंग की गई चेकिंग के दौरान दो पहिया व चार पहिया वाहनों को चेक किया गया जिसमें 95 वाहनों के ई चालान किया गया व 1 वाहन का चालान कर 500 रुपए सम्मन शुल्क वसूल किया गया साथ ही सरकार द्वारा जारी गाइडलाइन का उलंघन करने वाले 3 व्यक्तियों से 300 रुपए जुमार्ना वसूला गया।

अवैध तमंचा व कारतूस के साथ अभियुक्त गिरफ्तार

कौशाम्बी। जिले में अपराध एंव अपराधियो के विरुद्ध चलाये जा रहे अभियान के क्रम में थाना करारी पुलिस द्वारा वांछित अभियुक्त अफसार अहमद निवासी छिमिरछा थाना करारी को गिरफ्तार किया गया व जमा तलाशी के दौरान अभियुक्त के पास से एक अदद तमंचा 315 बोर व एक अदद जिंदा कारतूस 315 बोर बरमाद होने पर अभियुक्त को न्यायालय भेज दिया है।

लखीमपुर खीरी में किसानों की मौत पर कांग्रेसियों ने किया प्रदर्शन

● कांग्रेसियों ने किया पुतला फूंकने का प्रयास, पुलिस से हुई धक्का-मुक्की

अखंड भारत संदेश

प्रदर्शन करते कांग्रेसी

कौशाम्बी। केंद्रीय मंत्री के पुत्र द्वारा किसानों के प्रदर्शन में वाहन चलाने के बाद हुई 10 मौतों के विरोध में सोमवार को जिला मुख्यालय में कांग्रेसियों ने प्रदर्शन कर अपना विरोध दर्ज कराया। इस दौरान कांग्रेसी कार्यकताओं ने पुतला फूंकने का प्रयास भी किया जिसमे पुलिस और कार्यकताओं के बीच में धक्का-मुक्की हुई। मंझनपुर चौराहे से सरकार विरोधी नारे लगाते हुए कांग्रेसियों ने जिला मुख्यालय पहुंचकर राष्ट्रपति के नाम संबोधित ज्ञापन जिला प्रशासन को सौंपा और सरकार से तत्काल किसानों को एक करोड रुपए की सहायता राशि, मृतक परिवारों को सरकारी नौकरी और दोषियों को जेल भेजने की मांग उठाई। कार्यक्रम की अध्यक्षता जिलाध्यक्ष अरुण विद्यार्थी ने किया। कार्यक्रम में बोलते हुए पार्टी जिलाध्यक्ष अरुण विद्यार्थीनें कहा कि जिस तरीके से सत्ता के मद में चूर होकर आज भाजपा के मंत्री पुत्र ने किसानों को गाड़ी से कुचलने का काम किया है। वह दिखाती है कि भाजपा सरकार पूरी तरह से तानाशाह और निरंकुश हो चुकी है ऐसे में इस सरकार का विरोध जरूरी है। कार्यक्रम में बोलते हुए पार्टी नेता वेद प्रकाश सत्यार्थी ने कहा कि आज वह समय आ गया है जब फिर से किसानों नौजवानों को इन काले अंग्रेजों के विरोध पर सड़क में उतर कर इन्हें सत्ता से बेदखल करना होगा। आज फिर से नई क्रांति की आवाज का समय आ गया है। इस मौके पर उन्होंने कहा जिस तरीके से पार्टी नेता राष्ट्रीय महासचिव प्रियंका गांधी ने मौके पर पहुंचकर किसानों की बात उठाई है। उससे यह साबित होता है कि किसानों के हित में कांग्रेस सबसे पहले रहती है। कार्यक्रम में प्रमुख रूप से प्रदेश सचिव प्रभारी रामकिशुन पटेल, शमीम अहमद देवेश श्रीवास्तव रामसजीवन निर्मल, विनोद चौधरी, मनजीत कैथवास, राजनारायण, मो वैस, शाहिद सिद्दिकी, विवेक मिश्रा माइकल, कमलाकांत शुक्ला, इजहार अब्बास, असगर मदनी, मथुरा दुबे, मनोज कुमार, देव कुमार, विनय पासी, छितानी लाल दिवाकर, छोटेलाल पासी सहित सैकड़ों की संख्या में कांग्रेसी मौजूद रहे।

देश के किसानों से माफी मांगे भाजपा सरकार : अजय सोनी

समर्थ किसान पार्टी ने किया सड़क जाम, कलेक्ट्रेट में प्रदर्शन कर हत्यारों को फांसी दिए जाने की उठाई मांग, प्रेमचन्द केशरवानी ने कहा कि किसानों के उपर भाजपा सरकार का प्रायोजित हमला है

सड़क पर उतरे समर्थ किसान नेता

कौशाम्बी। लखीमपुर खीरी किसान हत्याकांड को लेकर समर्थ किसान पार्टी के कार्यकर्ताओ ने सोमवार को जनपद की सड़कों पर विरोध प्रदर्शन किया। इस दौरान पार्टी नेताओं एवं कार्यकताओं ने सड़क जाम कर किसान हत्याकांड के खिलाफ हुंकार भरी। पार्टी नेता अजय सोनी की अगुवाई में उदहिन चौराहा मंझनपुर मुख्यालय मार्ग को जाम किया गया और निर्दोष अन्नदाता पर जबरन भाजपाई गुंडों द्वारा गाड़ी चढ़ाकर रौंदने एवं जान से मार दिए जाने पर भारी आक्रोश व्यक्त किया गया। इसी के साथ समर्थ किसान पार्टी के तत्वावधान में जिला मुख्यालय मंझनपुर के डायट मैदान में धरना प्रदर्शन किया। इस अवसर पर समर्थ किसान पार्टी के नेता अजय सोनी ने कहा कि लखीमपुर खीरी किसान हत्याकांड भाजपा सरकार द्वारा एक सुनियोजित तरीके से किसानों की आवाज दबाने के लिए जानबूझकर कराया गया हत्याकांड है जिसमें तमाम निर्दोष किसानों की जान चली गई। केंद्र एवं प्रदेश सरकार को किसानों से जल्द माफी मांगनी चाहिए और भविष्य में ऐसी कोई घटना न हो, इसके लिए लिखित गारंटी देनी चाहिए। घटना के मात्र दो दिन पहले केंद्रीय गृह राज्य मंत्री अजय मिश्रा उर्फ टेनी ने खुलेआम किसानों को सुधार देने की चेतावनी दी थी और उनके बेटे आशीष मिश्रा उर्फ मोनू मिश्रा के द्वारा तत्काल किसानों पर जानलेवा हमला किया गया, जिससे जाहिर होता है कि लखीमपुर खीरी किसान हत्याकांड भाजपा सरकार द्वारा प्रायोजित है। इसके बाद डायट मैदान से जिलाधिकारी कार्यालय तक किसानों ने जुलूस निकाला और किसानों के हत्यारों को फांसी दो...फांसी दो...के नारे लगाए जिलाधिकारी कार्यालय पहुंचकर समर्थ किसान पार्टी के तमाम नेता एवं कार्यकर्ता जमीन पर धरना देकर बैठ गए मौके पर सदर उपजिलाधिकारी प्रखर उत्तम एवं क्षेत्राधिकारी मंझनपुर पहुंचे और किसानों को काफी देर तक समझाते रहे ।पार्टी कार्यकताओं ने महामहिम राज्यपाल को संबोधित एक पांच सूत्रीय ज्ञापन सदर उपजिलाधिकारी प्रखर उत्तम को सौंपा। इस अवसर पर सुरजीत वर्मा, अनिल गुप्ता, राजेश कुमार सरोज, रामबाबू गौतम, घसीटे लाल सरोज, लवकुश कुमार राजवंत सिंह, वेद प्रकाश यादव, पृथ्वी लाल लोधी, अली रजा, जुम्मन अली आदि मौजूद रहे।

शस्त्र और मुकुट पूजन के साथ मंझनपुर की रामलीला शुरू

रामलीला कमेटी के अध्यक्ष मुकुंदी लाल व उपजिलाधिकारी मंझनपुर मुकुटपूजा करते

कौशांबी। जनपद मुख्यालय मंझनपुर की अति प्राचीन रामलीला का शुभारंभ रविवार को शस्त्र और मुकुट पूजन के साथ शुरू हो गया है रामलीला कमेटी के अध्यक्ष मुकुंदी लाल और उप जिलाधिकारी मंझनपुर प्रखर उत्तम ने शस्त्र और मुकुट की विधि विधान से पूजा कर रामलीला की शुरूआत की है मुकुट पूजन के पूर्व फीता काटकर उप जिलाधिकारी ने रामलीला की शुरूआत की है शस्त्र और मुकुट पूजन मंत्रो द्वारा पुरोहित संजय मिश्रा द्वारा सम्पन्न कराई गई है इस मौके पर वरिष्ठ पत्रकार बैजनाथ केसरवानी उर्फ कल्लू पत्रकार आनंद कुमार केशरवानी उर्फ अन्नू आशीष कुमार केशरवानी उर्फ बच्चा प्रेमचंद चौधरी मुन्ना कोटेदार मूलचंद मोदनवाल सुशील केशरवानी पत्रकार बाल किशन केशरवानी पूर्व सभासद अतिन कुमार केसरवानी झल्लर चौरसिया नरेश सभासद लखनलाल बर्तन वाले सुशील इनवर्टर वाले पंकज गामा डॉक्टर अरुण केसरवानी डॉक्टर करम चंद केसरवानी चट्टू केसरवानी रिंकू केशरवानी सभासद सुबोध केसरवानी सुमित केसरवानी उज्ज्वल केशरवानी बच्चा लाल मास्टर बबलू सराफा पप्पू गौतम पत्रकार दुर्गेश गुप्ता अशोक कुमार लल्ला अग्रहरि अंशुल सभासद नीरज मोदनवाल अशोक हलवाई राजेश केशरवानी गौतम वर्मा मनीष केशरवानी कल्लू सोनी सहित तमाम गणमान्य व्यक्ति मौजूद रहे।

सपा के प्रदेश अध्यक्ष नरेश उत्तम का पूरामुफ्ती में भव्य स्वागत

कौशाम्बी। समाजवादी पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष नरेश उत्तम का पूरामुफ्ती में जोरदार स्वागत व अभिनंदन किया गया समाजवादी पार्टी के शहर पश्चिमी से भावी प्रत्याशी रमाकांत सिंह पटेल अपने हजारो साथियो के साथ सपा अध्यक्ष नरेश उत्तम को 51 किलो का फूलो का माला पहनाकर स्वागत व अभिनंदन किया। नरेश उत्तम ने अपने वक्तव्य में भाजपा पर निशाना साधते हुए कहा कि आज जनता महंगाई के बोझ तले दबते चली जा रही है ,वर्तमान सरकार किसानों के साथ बहुत अन्याय कर रही है ,ऐसी सरकार को उखाड़ फेंकना चाहिए स्वागत कर्ताओ में मुख्य रूप से रमाकांत सिंह पटेल, नेपाल सिंह पटेल,रवि पटेल,गुड्डू पटेल,दीपक पटेल,दिरगज कोरी, रविकान्त ,अरुण पटेल,सोनू पटेल,अंकित पटेल, कृष्णा प्रसाद शर्मा, सुशील कुमार यादव उर्फ इद्दी, कृष्णा प्रसाद पटेल प्रधान जी,नंदलाल उर्फ नंदा,हरिहर पटेल आदि हजारो लोग मौजूद रहे।

सपा की सरकार बनी तो भाजपा सरकार के घोटालों की कराई जाएगी जांच : नरेश उत्तम

किसान, नौजवान पटेल यात्रा में पहुंचे समाजवादी के प्रदेश अध्यक्ष नरेश उत्तम पटेल

अखंड भारत संदेश

मंच पर उपस्थित सपा नेता व अन्य

चायल कौशाम्बी। किसान नौजवान पटेल यात्रा का कार्यक्रम का आयोजन समाजवादी पार्टी द्वारा किया गया था इस कार्यक्रम के आयोजन के बाद एक जनसभा का आयोजन चायल क्षेत्र के रामनाथ सिंह डिग्री कॉलेज में किया गया है जनसभा में उपस्थित जनसमुदाय को संबोधित करते हुए समाजवादी पार्टी के प्रदेश अध्यक्ष नरेश उत्तम पटेल ने कहा कि बीजेपी सरकार झूठी सरकार है भाजपा सरकार लोगो को गुमराह करने की कोशिश करती है। उन्होंने कहा कि भाजपा सरकार के कार्यकाल में किसान नौजवान बेरोजगार मजदूर छात्र व्यापारी सब परेशान है उन्होंने उपस्थित जनसमुदाय को संबोधित करते हुए कहा कि अब जनता भाजपा के झूठे वादे से ऊब चुकी है और आने वाले विधानसभा चुनाव 2022 में समाजवादी की सरकार बनेगी। उपस्थित जनसमुदाय को संबोधित करते हुए उन्होंने कहा कि हमारी पिछली सपा सरकार में युवाओं को रोजगार सबसे ज्यादा दिया गया लेकिन बीजेपी सरकार ने प्रदेश में युवाओं को बेरोजगार कर दिया।किसान नौजवान पटेल यात्रा के दौरान सपा प्रदेश अध्यक्ष नरेश उत्तम पटेल ने कहा कि भाजपा की प्रदेश सरकार ने कोरोना के नाम पर करोड़ों की लूट किया। उन्होंने कहा कि यदि सत्ता में समाजवादी की सरकार बनी तो भाजपा सरकार के घोटालों की जांच कराई जाएगी उपस्थित जनसमुदाय को संबोधित करते हुए नरेश उत्तम ने कहा कि कोरोना से योगी सरकार ने मजदूर एवं किसानों की जान नहीं बचाई। मोदी ने किसानों को उनके खेतों में उपज का समर्थन मूल्य नहीं दिया। जैसे ही मंच पर नरेश उत्तम पटेल पहुंचे राकेश सिंह पटेल सहित तमाम समाजवादी पार्टी नेताओं ने गेट पर पहुंच कर माल्यार्पण कर उनका भव्य स्वागत किया खेत खलिहान कुटीर उद्योग बचाओ रोजगार के लिए सराय अकिल से चल कर बेनीराम कटरा होते हुए चायल तक इस पटेल यात्रा में किसानों और नौजवानों ने दम खम दिखाया। कार्यक्रम में सपा जिला अध्यक्ष दयाशंकर यादव, युवजन सभा जिला अध्यक्ष चंद्रजीत यादव, मोहम्मद साकिब शेख, मोहम्मद इमरान, कुशल सिंह पटेल, आसिफ जाफरी, उमेश दिवाकर, विज्मा दिवाकर, हरिओम पटेल, अभिषेक पटेल, विकास यादव, सुचित यादव, शैलेंद्र प्रधान, विकलांग सोनू यादव, अमरीश दिवाकर, किरण दिवाकर, कपूर यादव जिला मीडिया प्रभारी समाजवादी युवजन सभा सहित हजारों कार्यकर्ता मौजूद रहे।

लाठियों से पीटकर बालिका की हत्या

कोखराज थाना क्षेत्र के हिसामपुर परसखी गांव में सोमवार की सुबह दिया गया घटना को अंजाम

अखंड भारत संदेश

घटना स्थल पर मौजूद पुलिस व ग्रामीण

कल्यानपुर कौशांबी। कोखराज थाना क्षेत्र के हिसामपुर परसखी गांव में सोमवार की सुबह पड़ोसियों ने एक बालिका को लाठियों से पीट-पीटकर मौत के घाट उतार दिया है हमले की सूचना मिलते ही मौके पर स्थानीय पुलिस पहुंची है और छात्रा के शव को कब्जे में लेकर पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया है मृतक छात्रा के परिजनों का पड़ोसियों से लंबे समय से विवाद चला आ रहा है लेकिन पुलिस इस मामले में लापरवाह बनी हुई थी। घटनाक्रम के मुताबिक कोखराज थाना क्षेत्र के हिसामपुर परसखी गांव के श्याम सुंदर का अपने पड़ोसियों से लम्बे समय से विवाद चल रहा है कई बार मामला स्थानीय पुलिस चौकी पहुँचा लेकिन पुलिस ने मामले को गंभीरता से नहीं लिया सोमवार की सुबह तेज बारिश हो रही थी और बारिश का पानी श्याम सुंदर के घर में जाने लगा बरसात का पानी घर के भीतर जाने पर श्याम सुंदर ने पड़ोसियों से एतराज किया और श्याम सुंदर ने कहा कि अपने पानी आने के रास्ते को वह बंद कर दें इसी बात को लेकर विवाद बढ़ गया देखते देखते मारपीट और गाली गलौज शुरू हो गई आसपास के लोग भी मौके पर एकत्रित हो गए इसी बीच पड़ोस की एक महिला ने प्रियंका को पर लाठियों से प्रहार कर दिया जिससे प्रियंका गंभीर रूप से घायल हो गयी आनन-फानन में प्रियंका को परिजन इलाज के लिए जिला अस्पताल लेकर आए लेकिन रास्ते में प्रियंका की मौत हो गई मामले की जानकारी मिलते ही स्थानीय पुलिस जिला अस्पताल पहुंची और प्रियंका की लाश को कब्जे में लेकर पोस्टमार्टम के लिए भेज दिया है।

मिशन शक्ति के तहत अभियुक्त को सुनाई गई सजा

कौशाम्बी। थाना पश्चिम शरीरा पर पंजीकृत पाक्सो एक्ट के अभियुक्त दिलीप कुमार रैदास पुत्र राम विलास निवासी बौली थाना पश्चिम शरीरा को न्यायालय स्पेशल जज पाक्सो एक्ट द्वारा मिशन शक्ति के तहत व शासन की प्राथमिकता के आधार पर गंभीर एंव जघन्य अपराधों में पैरवी कर अभियुक्तो को सजा दिलाने के क्रम में पुलिस अधीक्षक के कुशल निर्देशन में प्रभावी पैरवी कराते हुए मॉनिटरिंग सेल के माध्यम से अभियुक्त को चार वर्ष कारावास व 10 हजार रुपए का अर्थ दंड से दंडित किया गया अर्थ दंड न अदा करने पर 6 माह की अतिरिक्त कारावास की सजा सुनाई गई।

बाइक सवार महिला से सोने की चैन व मंगलसूत्र छीनकर भागे स्नैचर

कौशाम्बी। चरवा थाना क्षेत्र के महंगांव चौकी अंतर्गत कोईलहा पेट्रोल पंप के पास नकाबपोश बदमाशों ने बाइक सवार महिला के गले से सोने की चैन व मंगलसूत्र छीनकर फरार हो गए। नकाबपोश बदमाशों के द्वारा महिला के गले से मंगलसूत्र व सोने की चैन खींचते वक्त बाइक अनियंत्रित हो जाने के कारण स्नैचिंग की शिकार महिला बाइक से सड़क पर गिर गई जिससे महिला को गंभीर चोटें आई है जिसका इलाज नजदीकी प्राइवेट हॉस्पिटल में चल रहा है। स्थानीय लोगों की सूचना पर घटनास्थल पर पहुंची पुलिस अज्ञात बदमाशों के खिलाफ मुकदमा दर्ज कर खोजबीन शुरू कर दी है। जानकारी के मुताबिक पूरामुफ्ती थाना क्षेत्र के बेगमपुर गांव निवासी राजकुमारी की लड़की कोईलहा स्थित पंडित दीन दयाल आश्रम पद्धति स्कूल के हॉस्टल में रहकर अध्यन कर रही हैं जिनसे मुलाकात करने के लिए राजकुमारी व उसके पति स्कूल जा रहे थे लेकिन जैसे ही कोईलहा स्थित पेट्रोल पंप के पास वह पहुंचे कि पीछे से नकाबपोश बदमाश आए और महिला के गले से सोने की चैन व मंगल सूत्र छीनकर फरार हो गए।

नवरात्रि, रामलीला व दशहरा पर्व पर कोविड -19 का पालन करते हुए त्यौहार मनाएं

अखंड भारत संदेश

दशहरा नवरात्रि को लेकर मंझनपुर में पीस कमेटी की बैठक संपन्न

कौशाम्बी। शांतिपूर्ण तरीके से त्यौहार मनाने के लिए मंझनपुर कोतवाली में पुलिस और आम जनमानस संभ्रांत व्यक्तियों की के बीच बैठक संपन्न हुई है आगामी दशहरा नवरात्रि के पर्व को सकुशल शांतिपूर्ण सम्पन्न कराने को लेकर मंझनपुर कोतवाली में पीस कमेटी की बैठक कोतवाल के नेतृत्व में आयोजित कर शांतिपूर्ण तरीके से त्यौहार में बनाने की अपील की गई है बैठक के दौरान कोतवाल ने कहा कि कोविड-19 का पालन करते हुए त्यौहार मनाया जाएंगा उन्होंने कहा कि मूर्ति विसर्जन गंगा नदी में नहीं किया जाएगा उन्होंने कहा कि शासन की मंशा है कि कोविड-19 गाइडलाइन का पालन होकोतवाली परिसर क्षेत्र के दर्जनों ग्राम प्रधानो नेता और गणमान्य व्यक्तियों के साथ रविवार को पुलिस ने बैठक कर नवरात्रि, रामलीला और दशहरा के पर्व पर कोविड -19 का पालन करते हुए त्यौहार मनाए जाने की अपील की है इस मौके पर कोतवाल ने कहा कि शासन ने डी० जे० पर प्रतिबंध लगाया है इसका कड़ाई से पालन हो उन्होंने कहा कि मूर्ति विसर्जन गंगा नदी व अन्य नदियों में न किया जाए इस बात का पूरी तरह से पालन हो पीस कमेटी की मीटिंग में भाजपा के पूर्व जिला अध्यक्ष प्रेमचंद चौधरी आशीष कुमार केसरवानी उर्फ बच्चा मुन्ना कोटेदार अमरेश कुमार केसरवानी उर्फ कल्लू पंडा नथन लाल सहित क्षेत्र के तमाम ग्राम प्रधान, प्रधान प्रतिनिधि व साभ्रान्त लोग मौजूद रहे।

भरवारी नगर पालिका परिषद के सभी वार्डों का होगा विकास : विधायक संजय गुप्ता

अखंड भारत संदेश

वार्ड का निरीक्षण करते चायल विधायक संजय गुप्ता

कौशाम्बी। विधायक चायल संजय कुमार गुप्ता ने नगर पालिका परिषद भरवारी के वार्ड नंबर 12 कृष्णा नगर के दरवेशपुर और लोनियन का पुरवा में भ्रमण कर स्थानीय लोगों के जन समस्याओं से अवगत हुए व साथ ही चल रहे विकास कार्यों का औचक निरीक्षण किया स्थानीय लोगों ने अपने अपने मोहल्ले की समस्याओं को विधायक से बताया विधायक ने नगर पालिका परिषद के जे ई उमेश कुमार को तत्काल मोहल्ले की नालियों व सड़क का माप करा कर विधिक कार्रवाई कर अति शीघ्र कार्य शुरू किए जाने हेतु निर्देशित किया दरवेशपुर में स्थानीय जनमानस की मांग पर एक हाई मास्ट स्ट्रीट लाइट व दो नए हैंडपंप और चकमाहपुर में एक हाई मास्ट स्ट्रीट लाइट और पांडे मऊ में दो हाई मास्ट स्ट्रीट लाइट व लोनियन का पूरा में दो नए हैंडपंप और एक हाई मास्ट स्ट्रीट लाइट की स्थापना की घोषणा करते हुए संबंधित विभाग को निर्देशित किया कि जल्द से जल्द नवरात्रि के शुरूवात तक प्रत्येक हाई मास्ट व नये हैंडपंप की स्थापित किया जाए। लापरवाही बरतने पर विधायक ने सख्त हिदायत देते हुए कहां कि किसी भी कीमत पर कार्य में ढिलाई नहीं बरती जानी चाहिए विधायक ने कहा कि दिए गए निश्चित समय सीमा तक कार्य पूरा किया जाए। विधायक ने कहा कि नगर पालिका परिषद बनाने में मुझे कई कठिनाइयों का सामना करना पड़ा लोगों ने नगर पालिका परिषद ना बनने की कई बार आपत्तियां भी किया गया था जिसका पिछले सप्ताह न्यायालय का नगर पालिका परिषद भरवारी को बनाए जाने के पक्ष में जजमेंट भी आ गया उन्होंने कहा कि यह एक तरह से खुशी का दिन है। कार्यक्रम में मुख्य रूप से मंडल अध्यक्ष काजू राममिलन चौधरी मनोज कुमार शुक्ला पिछड़ा मोर्चा जिला महामंत्री सूरज यादव राजेंद्र कुमार शर्मा परमेश्वर दयाल शर्मा वीरेंद्र कुमार शर्मा दिलीप कुमार मिश्रा ओम नारायण मिश्रा राजन सरोज अश्विनी धुरिया सहित तमाम स्थानीय लोग मौजूद रहे।

चार वारण्टी अभियुक्त किये गये गिरफ्तार

कौशाम्बी। जिले में अलग अलग थानों द्वारा चार वारण्टी अभियुक्तो को गिरफ्तार कर न्यायालय भेज दिया है जानकारी के मुताबिक थाना मंझनपुर पुलिस द्वारा वारण्टी अभियुक्त सुखलाल पुत्र रामकृपाल निवासी कोर्रई थाना मंझनपुर को गिरफ्तार कर कार्यवाही के पश्चात न्यायालय भेज दिया है इसी प्रकार थाना थाना करारी पुलिस द्वारा वारण्टी अभियुक्त अमृत लाल पुत्र राम रतन निवासी बैशकाटी थाना करारी को गिरफ्तार कर न्यायालय भेज दिया है इसी प्रकार थाना सैनी पुलिस द्वारा वारण्टी अभियुक्त छोटा सिंह पुत्र फूल सिंह निवासी खोजवापुर थाना सैनी को गिरफ्तार कर कार्यवाही के पश्चात न्यायालय भेज दिया है,। इसी प्रकार थाना कोखराज पुलिस द्वारा वारण्टी अभियुक्त पवन कुमार पांडेय पुत्र गोविंद पांडेय निवासी परसरा थाना कोखराज को गिरफ्तार कर कार्यवाही के पश्चात न्यायालय भेज दिया है।

दरोगा को चौकी मूरतगंज में फिर चार्ज मिलते ही दलाल व भूमाफिया धना दोहन में जुटे

अखंड भारत संदेश

बीती रात चौकी इंचार्ज व उसके दलाल ने एक गरीब महिला की कालोनी को गिरवा दिया कारण रुपया नही दिया

कौशाम्बी। कोखराज क्षेत्र के चौकी मूरतगंज में इन दिनों लेखपाल व चौकी इंचार्ज अपने अपने दलालों को केवल धना दोहन करने का काम सौप रखा हैं चौकी इंचार्ज के दलाल इतने खास हैं कि बिना इनके चौकी का मुन्सी भी कुछ नही करता जबकि बीती रात कशिया नजीर गंज निवासी राम रति पत्नी दीन बन्ध सरोज की कालोनी की दीवार बनी थी।जिस पर चौकी के मुन्सी को दलाल ने सूचना दी कि यह तो बिना रुपया दिए ही कालोनी बना रहा हैं तभी चौकी इंचार्ज ने उसके ही चचेरे परिवार को बुला लिया और कहा कि केवल विवाद बता देना हम दीवाल गिरवा देंगे तब यह भाग कर चौकी आएगा तो रुपया देगा पीड़ित पक्ष के साथ वही हुआ दीवाल गिर गयी और रुपया मांगा गया पचास हजार वह भी लेखपाल का खर्चा अलग यह वही लेखपाल हैं जिनका ट्रान्सफर सिराथू हो चुका है लेकिन इनका खेल मूरतगंज में अभी भी धनादोहन में खुब रुपया वसूल रहे हैं।कल लेखपाल ने ही चौकी इंचार्ज व दलाल एक तलाबी नम्बर पर रुपया लेकर कब्जा भी कर दिया जिसके वीडियो भी वायरल हुआ है मौके पर जा कर लेखपाल यह कहते हैं कि चलो ठीक है। इन करतूतों को हवा देने में माहिर इसी चौकी में रहे दरोगा जो आज फिर चौकी इंचार्ज हैं तो इनके दलालों के आगे सभी बेबस व लाचारी से इस तरह के दबाव को गरीब जनता सह रही हैं। चौकी इंचार्ज के इस कृत्य से सरकार के ऊपर जनता ने सवाल खड़े करने सुरु कर दिए है।क्या इस सरकार में अब जनता को पुलिस से भी न्याय नही मिलेगा इस भ्रष्टाचारी चौकी पुलिस व दलालों से पीड़ित को निजात मिल पायेगी या यह चौकी केवल दलालो की रह जायेगी।

सम्पादकीय

पुलिस अत्याचार की अति

इस मामले में भी पिछली सुनवाई के दौरान जस्टिस रमना ने पुलिस अधिकारियों में दिख रही इस प्रवृत्ति को रेखांकित किया था कि वे सत्तारूढ़ दल के नेताओं से करीबी ताल्लुकात के लिए उनके अवैध आदेशों का पालन करते हुए सारी हदें पार कर जाते हैं और फिर सत्ता बदलने पर नई सरकार का कोपभाजन बनते हैं। देश के मुख्य न्यायाधीश एन वी रमना ने अफसरशाही, खासकर पुलिस ऑफिसरों की ओर से किए जा रहे अत्याचारों पर गंभीर चिंता जताई। उन्होंने कहा कि इसे बर्दाश्त नहीं किया जा सकता। मुख्य न्यायाधीश रमना ने यहां तक कह दिया कि वह राज्यों में हाई कोर्ट के चीफ जस्टिस के नेतृत्व में ऐसी स्थायी समिति बनाने के हक में हैं, जो समय-समय पर आने वाली इन शिकायतों की जांच करे। चीफ जस्टिस रमना ने यह बात ऐसे समय कही है, जब यूपी के गोरखपुर में एक होटल पर छापे के दौरान कथित तौर पर पुलिसकर्मियों की मारपीट से हुई एक प्रॉपर्टी डीलर की मौत सुर्खियों में है। जिस मामले की सुनवाई करते हुए जस्टिस रमना ने हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीश की अगुआई में समिति बनाने की यह बात कही, उसमें छत्तीसगढ़ के एक निलंबित अतिरिक्त पुलिस महानिदेशक गिरफ्तारी से राहत देने की गुजारिश लेकर आए थे। इस वरिष्ठ पुलिस अधिकारी पर राजद्रोह और अवैध वसूली समेत कई आपराधिक गतिविधियों में शामिल रहने के आरोप हैं। हालांकि पुलिस अधिकारी के मुताबिक उसे पिछली सरकार से कथित तौर पर करीबी रिश्तों की सजा दी जा रही है।

इस मामले में भी पिछली सुनवाई के दौरान जस्टिस रमना ने पुलिस अधिकारियों में दिख रही इस प्रवृत्ति को रेखांकित किया था कि वे सत्तारूढ़ दल के नेताओं से करीबी ताल्लुकात के लिए उनके अवैध आदेशों का पालन करते हुए सारी हदें पार कर जाते हैं और फिर सत्ता बदलने पर नई सरकार का कोपभाजन बनते हैं। उन्होंने इस प्रवृत्ति पर रोक लगाने की बात कही थी। निश्चित रूप से यह प्रवृत्ति किसी एक मामले या एक राज्य तक सीमित नहीं है। पुलिस अधिकारियों और सत्तारूढ़ नेताओं के निजी स्वार्थों का गठबंधन ही इस पूरे खेल के पीछे है। संभवतः इस गठबंधन को तोड़ने की जरूरत महसूस करते हुए ही जस्टिस रमना ने यह बात कही कि हाईकोर्ट के मुख्य न्यायाधीशों की अगुआई में समिति बनाने का विकल्प भी उपलब्ध है। मगर देखा जाए तो यह समस्या मूलतः कार्यपालिका के कार्यक्षेत्र से जुड़ी है। थोड़ी और सटीकता से कहें तो कानून व्यवस्था राज्य सरकार का मामला है और इसलिए इसे हल करने की जिम्मेदारी भी प्राथमिक तौर पर राज्य सरकारों की ही बनती है। दिक्कत यह है कि इसे हल करने की दिशा में कारगर कदम उठाना तो दूर, ऐसी कोई इच्छा भी राज्य सरकारें नहीं दिखा रहीं। जब कोई मामला मीडिया में आकर चर्चित हो जाता है तो पीडि़त पक्ष को नौकरी और नकद सहायता वगैरह देकर मामले को ठंडा कर लिया जाता है। फिर नई घटना होने तक शांति बनी रहती है। ऐसे में मुख्य न्यायाधीश का समिति बनाने के विकल्प से अपनी सहमति जताना और ऐसा आदेश न देना काफी अर्थपूर्ण है। यह सभी संबंधित पक्षों के लिए गंभीर चेतावनी है। बेहतर होगा कि इस संदेश से सबक लेकर पुलिस महकमा और राज्यों का राजनीतिक नेतृत्व समय रहते अपना रवैया सुधार लें और न्यायपालिका को दखल देने की जरूरत न पड़े।

राहुल अपने पैरों पर खुद कुल्हाड़ी मारते हैं

डॉ. हरिकृष्ण बड़ोदिया

आज के भारत में सर्वाधिक विवादित नेता कोई है तो वह राहुल गांधी ही हैं। हालांकि उनके बारे में सार्वजनिक रूप से कांग्रेस पार्टी के समर्पित कार्यकर्ताओं और नेताओं ने कभी कोई बयान नहीं दिया लेकिन इस बात से इंकार नहीं किया जा सकता कि लगातार पार्टी की गिरती हुई साख के पीछे बहुतेरे ऐसे कांग्रेसी जरूर होंगे जो राहुल गांधी को जिम्मेदार मानते होंगे। जिस कांग्रेस का कभी विस्तृत जनाधार हुआ करता था, जिसका पूरे देश पर एक छत्र राज था वह आज इतनी सिमट गई है कि उंगलियों पर गिने चुने राज्यों में सत्ता पर काबिज है। यही नहीं इसमें और कितनी गिरावट आएगी कहा नहीं जा सकता।

यूपीए के दो शासन कार्यकाल में जैसे तैसे वैसाखी पर सरकार चलाने वाली कांग्रेस 2014 के बाद से लगातार हाशिए पर जा रही है लेकिन प्रथम परिवार को जरा भी चिंता नहीं दिखाई देती। अगर चिंता होती तो विचार मंथन होता, विचार मंथन होता तो कोई रास्ता निकाला जा सकता किंतु इसके विपरीत आज भी पार्टी में असंतोष का समाधान निकालने की जगह असंतोष को दबाने पर ज्यादा जोर दिया जा रहा है। जी-23 के वरिष्ठ और अनुभवी सदस्यों की अगर बात करें तो स्पष्ट होता है कि ये वे लोग हैं जो चाहते हैं कि कांग्रेस अपने पुराने गौरव को प्राप्त करे। यदि कांग्रेस की छवि ठीक होगी तो नेताओं की छवि निखरेगी, किंतु हर समस्या को ठंडे बस्ते के हवाले करना कांग्रेस हाईकमान की आदत बन गई है जिसका खामियाजा पार्टी को उठाना पड़ रहा है। चाहे राजस्थान हो या छत्तीसगढ़ या पंजाब सभी जगह पार्टी में असंतोष कांग्रेस हाईकमान की तात्कालिक और अस्थाई समाधान की उपज है। राजस्थान में अशोक गहलोत और सचिन पायलट के बीच सत्ता संघर्ष किसी से छिपा नहीं है। असल में यह देखने में आया है कि कांग्रेस का प्रथम परिवार इस बात में रुचि नहीं दिखाता कि कांग्रेस में युवा नेतृत्व को आगे बढ़ाना पार्टी के लिए ज्यादा फायदेमंद है। उसके पीछे का कारण प्रथम परिवार में इस बात की असुरक्षा दिखाई देती है कि कोई युवा नेता कहीं राहुल गांधी को चुनौती देने योग्य ना बन जाए। राजस्थान में वर्तमान गहलोत सरकार के अस्तित्व में आने के समय ही सचिन पायलट का मुख्यमंत्री पद का दावा उचित और प्रासंगिक था। कांग्रेस को राजस्थान में जिताने में सचिन पायलट ने जी जान लगा दी थी जिसके परिणाम स्वरूप कांग्रेस आज सत्ता में है, लेकिन तब कांग्रेस हाईकमान ने प्रदेश की कमान गहलोत को सौंप कर असंतोष के बीज बो दिए थे और जब असंतोष सतह पर आया तो उसे दबाने के लिए कुछ वादे कर मामला शांत कर दिया गया। जब वादा खिलाफी हुई तो सचिन बगावत पर उतर आए। सचिन पायलट को फिर समझा-बुझाकर मामला रफा-दफा किया। वास्तव में सचिन ने भी अपनी शक्ति का अंदाजा लगा लिया था यदि उनहें अनुकूल परिस्थितियां और विधायकों का पर्याप्त संख्या बल का समर्थन मिल जाता तो वह आज भाजपा के मुख्यमंत्री होते। सच्चाई तो यह भी है कि राजस्थान में गहलोत को पीछे से ताकत पूर्व मुख्यमंत्री वसुंधरा राजे ने दी जिसकी वजह से सचिन पायलट को अपने कदम वापस लेना पड़े। अगर हम छत्तीसगढ़ की बात करें तो इस राज्य में सरकार के गठन के समय मुख्यमंत्री पद के दो दावेदार थे एक भूपेश बघेल तो दूसरे टी एस सिंह देव। उस समय आलाकमान ने सिंह को यह कहा कि भूपेश बघेल ढाई साल मुख्यमंत्री रहेंगे और उसके बाद उन्हें मुख्यमंत्री बनाया जाएगा लेकिन जब वादे के मुताबिक परिवर्तन नहीं किया गया तो वहां भी असंतोष सतह पर आ गया। इसी तरह पंजाब में कैप्टन अमरिंदर सिंह को शक्तिहीन करने के लिए आलाकमान ने नवजोत सिंह सिद्धू का जिन पैदा कर दिया। जिसके परिणाम स्वरूप आखिर कैप्टन अमरिंदर सिंह को इस्तीफा देना पड़ा।

कैप्टन ने खुद कहा कि वे अपमानित महसूस कर रहे हैं। कुल मिलाकर आज की स्थिति में ना तो हाईकमान का पार्टी नेताओं पर नियंत्रण है और ना कोई स्पष्ट नीति और ना ही निष्पक्ष निणर्य की क्षमता। ऐसी स्थिति में असंतोष पनपने को किसी भी दशा में रोका ही नहीं जा सकता। इन दुर्लभ स्थितियों में पार्टी कार्यकर्ताओं पर जो नकारात्मक प्रभाव होता है उसकी प्रतिछाया पार्टी में हर कहीं दिखाई देती है। पार्टी के कार्यकर्ता और समर्पित नेता थोड़ी बहुत स्थितियां संवारने की कोशिश करते हैं तब तक राहुल गांधी कोई ना कोई ऐसा बयान दे बैठते हैं कि कार्यकर्ता एक कदम आगे बढ़कर दो कदम पीछे से खिसकने को मजबूर होना पड़ता है। उनका उत्साह राहुल के बयानों से कुंद हो जाता है। वस्तुतः राहुल गांधी को जितनी परिपक्वता दिखानी चाहिए दिखा ही नहीं पाते। उनके बयान कभी-कभी ऐसे लगते हैं जो किसी कुंठा ग्रस्त व्यक्ति द्वारा दिए गए हों। लगता तो ऐसा है कि राहुल गांधी मंच पर जाने के पहले तैयारी बिल्कुल नहीं करते।

वह बिना यह सोचे कि उनके बोलने से पार्टी को क्या नुकसान या फायदा होगा बोलते चले जाते हैं। अति उत्साहित और प्रभावशाली वक्ता बनने के चक्कर में ऊल जलूल भाषण दे जाते हैं। 2004 से सक्रिय राजनीति में आने वाले राहुल गांधी आज 17 वर्षों बाद भी राजनीति में वक्तव्य के महत्व को समझने में असमर्थ दिखाई देते हैं। वे आज भी यह नहीं जानते कि क्या कहकर जनता को अपने पक्ष में कर सकते हैं और क्या कहने पर जनता उनसे छिटक जाएगी। अभी हाल ही में अखिल भारतीय महिला कांग्रेस के स्थापना दिवस के अवसर पर राहुल गांधी कुछ ऐसा बोल गए कि उससे उनकी किरकिरी हो गई। उनके सामान्य ज्ञान पर फिर एक बार प्रशनचिन्ह लग गया। आज की स्थिति में जब देश में राष्ट्रवादी सोच को व्यापक समर्थन मिल रहा है, जब देश की बहुत बड़ी आबादी में अपने हिंदू होने का गौरव जाग गया है, जब देश की सबसे बड़ी राजनीतिक पार्टी भाजपा के विचारों और सिद्धांतों में देश की बहुत बड़ी आबादी का यकीन है, तब आप यदि हिंदुत्व और हिंदूवादी दलों को कटघरे में खड़ा करके अपने पक्ष में माहौल बनाने का सोचते हैं तो आप से ज्यादा ना समझ कोई नहीं हो सकता। कौन नहीं जानता कि भाजपा, आरएसएस और हिंदूवादी संगठनों के वैचारिक प्रसार का परिणाम ही है कि राहुल गांधी को स्वयं को जनेऊधारी हिंदू बताने के लिए मजबूर होना पड़ा। यही नहीं हर चुनाव में हर शहर में आपको मंदिरों में मत्था टेकना पड़ा। इस सब के बाद भी आप हिंदूवादी संगठनों पर गैरजरूरी टिप्पणी करेंगे तो हास्यास्पद ही है। राहुल गांधी ने एक बार भी नहीं सोचा कि वह जो बोल रहे हैं वह उनकी पार्टी, जो आजकल हिन्दू तुष्टीकरण के लिए हिंदुत्व राग अलाप रही है के विरुद्ध ही जा रहा है। राहुल ने आरएसएस और भाजपा पर आरोप लगाते हुए कहा कि 'यह कैसे हिंदू हैं जो हिंदू धर्म की दलाली करते हैं।

आरएसएस और मोदी ने लक्ष्मी- दुर्गा की शक्तियां 3-4 हाथों में पहुंचा दी हैं। आरएसएस और बीजेपी के लोग महिला शक्ति को दबा रहे हैं। राहुल गांधी ने नोटबंदी और जीएसटी का उल्लेख करते हुए कहा कि मोदी सरकार ने लक्ष्मी की शक्ति और दुर्गा की शक्ति पर आक्रमण किया है। वह अपने आप को हिंदू कहते हैं। यह लोग झूठे हिंदू हैं। यह लोग हिंदू नहीं है। यह हिंदू धर्म का इस्तेमाल करते हैं।' इस तरह के वक्तव्य से नुकसान भाजपा को नहीं बल्कि राहुल गांधी और कांग्रेस को ही होना है। आज भारत का हर नागरिक यह जानता है यह भाजपा की ताकत ही है कि कांग्रेस और अन्य विपक्षी दलों को अपनी मुस्लिम तुष्टिकरण और छद्म धर्मनिरपेक्षता की नीति से अलग हटकर हिंदू तुष्टिकरण की ओर बढ़ना पड़ रहा है। इससे बड़ी नादानी और क्या होगी कि उन्होंने महात्मा गांधी और सरसंघचालक मोहन भागवत की तुलना कर अपने सतही ज्ञान का ढिंढोरा पीटा। उन्होंने कहा कि 'बीजेपी और आरएसएस महिलाओं को आगे नहीं आने देना चाहते 'राष्ट्रपिता महात्मा गांधी की तस्वीरों में आसपास दो तीन महिलाएं दिखती हैं लेकिन मोहन भागवत की तस्वीर में कोई महिला नहीं दिखती।' कांग्रेस महिला शक्ति को आगे बढ़ाता है आरएसएस दबाता है। आरएसएस ने किसी महिला को पीएम नहीं बनाया जबकि कांग्रेस ने बनाया।' सच्चाई तो यह है कि यह तो हिंदुओं की उदारता है जो अपने देवी-देवताओं के विरुद्ध बोलने वालों को भी सहन कर लेती है अन्य किसी धर्म के बारे में राहुल कहकर देखें प्रतिक्रिया को सहन करना मुश्किल हो जाएगा। आज की स्थिति में देश का कोई भी राजनीतिक दल हिंदूवादी विचारधारा, हिंदू मान्यता और हिंदुत्व की अवधारणा की उपेक्षा नहीं कर सकता और यह भी कि यदि कोई हिंदू देवी देवताओं के बारे में गलत बयानी करेगा तो उसे हिंदू भुलाएंगे नहीं।राहुल गाँधी जितना जल्दी यह समझ लें उतना अच्छा है।

यौन हिंसाः कुछ भी बदलता क्यों नहीं

चिन्मय मिश्रा

सन् 1978 में महाश्वेता देवी ने ''द्रोपदी'' शीर्षक से एक लघु कथा लिखी थी। पितृसत्ता से लड़ने वाली और नक्सलवादी होने के आरोप के मद्देनजर उसकी गिरफ्तारी होती है। पुलिस अधिकारी अपने कुछ सिपाहियों से उसका बलात्कार करने को कहता हैं। बलात्कार करने के बाद सिपाही उससे पुनः कपड़े पहनने को कहते हैं। परंतु द्रोपदी कपड़े पहनने से इंकार कर देती है। और दांतों से अपने बाकी के कपड़े भी फाड़ देती है। बड़े अफसर के सामने वह निःवस्त्र ही जाती है और कहती है, ''मैं कपड़े क्यों पहनू ? यहां कोई इंसान ऐसा नहीं है, जिससे मैं शर्माऊ। इस कहानी के लिखे जाने के भी 6 बरस पहले 26 मार्च 1972 को महाराष्ट्र के गढ़चिरौली जिले के देसाईगंज थाना परिसर में मथुरा नाम की एक आदिवासी लड़की (14 से 16 वर्ष के मध्य) के साथ दो पुलिसकर्मियों ने बलात्कार किया था। सेशन न्यायालय ने अभियुक्तों को बरी कर दिया था। बम्बई उच्च न्यायालय ने दोनों को सजा दी लेकिन सर्वोच्च न्यायालय ने सन् 1979 में उच्च न्यायालय के फैसले को यह कहते हुए रद्द कर दिया कि मथुरा ने, ''कोई शोर नहीं बचाया और उसके शरीर पर चोट के कोई निशान नहीं थे, संघर्ष के भी कोई चिन्ह नहीं मिलते अतएव कोई बलात्कार नहीं हुआ। चूंकि वह संभोग की आदी थी, तो संभव है उसने पुलिस वालों को उकसाया हो (वे ड्यूटी के दौरान नशे में थे) कि वे उसके साथ शारीरिक संबंध बनाए'' (साधारण भाषा में अनुवाद) इस निणर्य के पश्चात प्रो. उपेन्द्र बक्शी सहित तमाम लोगों ने सर्वोच्च न्यायालय को पत्र लिखा, देश भर में विरोध प्रदर्शन हुए। निणर्य तो नहीं बदला परंतु बलात्कार संबंधी कानून में जरुर परिवर्तन हुआ। वस्तुतः स्थितियां बहुत नहीं बदलीं। 15 जुलाई 2004 को मणिपुर की 12 महिलाओं ने मनोरमा थंगजाम की मृत्यु व कथित बलात्कार के खिलाफ, इंफाल स्थित असम राईफल्स के मुख्यालय के सामने नगन होकर प्रदर्शन किया था। इन बारह माँ या इमा के हाथों में तख्तियां थीं जिन पर लिखा था ''भारतीय सेना हमारा बलात्कार करो'' और ''भारतीय सेना हमारा माँस ले लो।'' मनोरमा के गोलियों से छलनी शरीर के निजी अंगों पर गोलियों के घाव थे। परिस्थितियों में उसके बाद तब भी कोई बदलाव नहीं आया। सन् 2012 में दिल्ली में हुआ निभर्या कांड जघन्यता की सभी सीमाओं को झुठला चुका था। सारा देश विचलित हुआ। फिर नए सिरे से कानूनों पर मनन हुआ और इस कांड में शामिल चार वयस्कों को 20 मार्च 2020 को फाँसी भी दे दी गई। फाँसी की सजा का अभी स्मृति लोप भी नहीं हुआ था कि 14 सितंबर 2020 को हाथरस जिले में एक 19 वर्षीय दलित युवती के साथ बलात्कार और उसके बाद दी गई यातनाओं की वजह से उसकी करीब दो हफ्ते बाद अस्पताल में मृत्यु हो गई। यानी 200 दिनों तक भी फाँसी का कोई प्रभाव नहीं रहा। इससे भारतीय पुरुष समाज या पितृसत्तात्मक मानसिकता के दंभ को समझा जा सकता है।

जघन्यता, क्रूरता व वीभत्सता की निरंतरता को हम वर्तमान परिप्रेक्ष्य में भी देखें ! दिल्ली के एक श्मशान घाट का पुजारी और उसके साथ एक 9 वर्षीय बालिका के साथ बलात्कार के दौरान आरोपी उसका मुँह इतनी जोर से बंद रखते हैं कि उसकी दम घुटने से मृत्यु हो जाती है। हैवानियत की शायद कोई सीमा नहीं होती। इस बालिका के साथ संभवतः उसकी मृत्यु के बाद भी सामुहिक बलात्कार का दौर चलता रहा होगा। मध्यप्रदेश के बुंदेलखंड अंचल में सामुहिक बलात्कार की प्रक्रिया में युवती आँखों को एसिड (पुलिस के अनुसार जहरीली वनस्पति) से जला दिया जाता है। महाराष्ट्र में एक नाबालिग लड़की के साथ 8 महीनों में 33 लोग बलात्कार करते हैं। ग्वालियर में 4 साल की लड़की के साथ बलात्कार होता है। अपने एक शोध के दौरान मैं और मेरी पतनी ऐसे 2 बच्चों से मिले जिनकी उम्र 3 वर्ष से कम थी और उनके साथ बलात्कार हुआ था। बारह वर्ष की ऐसी बालिका से मिले जो कि यौन संबंधों की आदी हो चुकी है और उसका परिवार उसे किराये पर देता था। वैसे अब वह मुक्त है। अनगिनत मामले हैं, महिलाओं, युवतियों और बच्चियों (और अब किशोरों व लड़कों) के साथ भी यौन अपराधों के परंतु हमारा समाज इस समस्या से आँख नहीं मिलाना चाहता।

महाश्वेता जी की कहानी न तब काल्पनिक थी न अब ! इसे एक शाश्वत सच्चाई की तरह स्वीकारना होगा। मर्दो की नंगई अब सभी सीमाएं पार कर गई है। सामुहिक बलात्कार करते हुए उन्हें अपने नगन चित्रण तक में कोई संकोच नहीं होता। क्या यह मनुष्य कहलाने के काबिल भी हैं ? बलात्कार के वीडिया सार्वजनिक कर देने से (ना) मर्दों के सम्मान को कोई ठेस नहीं पहुंचती। शायद ऐसा इसलिए कि उन्होंने नगन्ता को अपना आभूषण और अपनी मर्दानगी का सबूत समझ लिया है । गिरने की सीमा को पुरुष समाज का एक अंश तोड़ चुका है। यह नंगई शौर्य प्रदर्शन का क्या कोई नया तरीका है ? भारत के तकरीबन हर अंचल में बलात्कार व यौन प्रताड़ना देने के नए-नए वीभत्स तरीके सामने आ रहे हैं महिलाओं का प्रतिकार समाज में उनके प्रति समर्थन जुटा पाने में असमर्थ है। कारण ? संभवतः यही की पीडिताएं अधिकांशतः वंचित, आदिवासी या अल्पसंख्यक वर्गो से ताल्लुक रखती हैं। ऐसा क्यों ? इस अलगाव की जड़ें बहुत पहले मजबूत की जा चुकी हैं। सीमोनंद बुआ बताती हैं। अरस्तु स्त्री को परिभाषित करते हुए कहते हैं, औरत कुछ गुणवत्ताओं की कमियों के कारण ही औरत बनती है। हमें स्त्री के स्वभाव से यह समझना चाहिए कि प्राकृतिक रूप से उसमें कुछ कमियां हैं। वह एक प्रासंगिक जीव है। वह आदम की एक अतिरिक्त हड्डी से निर्मित है। अतः मानवता का स्वरूप पुरुष है और पुरुष से संबंधित ही परिभाषित करता है। वह औरत को स्वायत्त व्यक्ति नहीं मानता। वह अपने बारे में सोच भी नहीं सकती। इसका अर्थ यह है कि वह अनिवार्यतः पुरुष के भोग की एक वस्तु है और इसके अलावा और कुछ नहीं। यानी पुरुष पूर्ण है जबकि औरत बस ''अन्या''। भारतीय बलात्कारियों ने भले ही अरस्तु को न पढ़ा हो लेकिन वे इस वैश्विक भेदभाव को सहस्त्राब्दियों से अपने मन में सहेजे हुए हैं और उसे अपना अधिकार मानते हैं। ऐसा लगा था कि भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन में महिलाओं की निर्णायक भूमिका के चलते उनकी परिस्थिति में आमूलचूल परिवर्तन आएगा।

किसान आंदोलनः धरती माता के यहां रिश्वत नहीं चल सकती !

राजेश महेश्वरी

''किसान वास्तविक धन का उत्पादक है, क्योंकि वह मिट्टी को गेहूँ, चावल, कपास के रूप में परिणत करता है। दो घंटे रात रहते खेतों में पहुंचता है। जेठ की तपती दुपहरी हो या माघ-पूस के सबेरे की हड्डी छेदने वाली सर्दी, वह हल जोतता है, ढेले फोड़ता है, उसका बदन पसीने से तरबतर हो जाता है, उसके एक हाथ में सात-सात घट्टे पड़ जाते हैं फिर भी वह मशक्कत करता रहता है। क्योंकि उसे मालूम है कि धरती माता के यहां रिश्वत नहीं चल सकती। वह स्तुति प्रार्थना के द्वारा अपने हृदय को नहीं खोल सकती। राहुल सांकृत्यापन किसान आंदोलन ने संघर्ष के नौ माह पूरे कर लिए। इसलिए यह सवाल उठना लाज़मी है कि इससे क्या हासिल किया और क्या खोया? किसान आन्दोलन खोने और पाने से आगे की स्थिति पर पहुंच गया है। यह भारत को पुनः लोकतंत्र की ओर मोड़नेवाला उपक्रम बन गया है। इस आंदोलन ने मूलतः दो बातों को पुर्नस्थापित किया है। पहली यह कि भारतीय संविधान का पूर्ण क्षरण नहीं हुआ है और दूसरी अधिनायकवादी लोकतंत्र को जवाब दिया जा सकता है, उसका विकल्प अभी भी मौजूद है। इस आंदोलन के प्रति सरकार/सरकारों की बेरुखी भी यह दर्शा रही है कि शासक वर्ग किसानों की सच्ची निर्मलता से आँख मिला पाने में असमर्थ है। साथ ही सरकार को अपने को सही सिद्ध करवाना कमोवेश असंभव होता जा रहा है। इसलिए आम जनता का ध्यान लगातार बांटा जा रहा है। नवीनतम उदाहरण है कि प्रधानमंत्री का जन्मदिन 17 सितंबर से 7 अक्टूबर तक पूरे देश में समारोहित किया जाएगा। यह ऐसे समय हो रहा है, जबकि कोरोना महामारी अभी थमी नहीं हैं, इससे तड़प-तड़पकर हुई मौतों का मंजर अभी आँखों से ओझल नहीं हुआ है, बेराजगारी अपने चरम पर है, अर्थव्यवस्था हांफ रही है, अपराध दिन दूने, रात चौगुने हो रहे हैं, मँहगाई रोज नए रिकार्ड बना रही है, सांप्रदायिकता नये कलेवर के साथ सर्वव्यापी होने को तैयार है 2 अक्टूबर को गाँधी जयंती भी है, आदि - आदि। किसान आंदोलन ने पिछले नौ महीनों में यह तो बतला दिया कि भारत में एक बार पुनः संघर्ष की राह पर चलने की ललक पैदा हुई है। साथ ही सामूहिकता का असाधारण संकल्प भी सामने आया है। 500 से ज्यादा आंदोलनकारियों की मृत्यु के बावजूद किसान आंदोलन का अहिंसक बना रहना किसी चमत्कार से कम नहीं है। हाल ही में करनाल में हुई महापंचायत, प्रदर्शन व सचिवालय का घेराव इसकी गवाही दे रहे हैं। आधुनिक समाज का बड़ा वर्ग सत्य और अहिंसा से बचना चाह रहा है, यह आंदोलन उनके लिए मिसाल है। इस आंदोलन ने सत्ता के दंभ को भी बेनकाब किया है और स्वयं को लगातार विस्तारित किया है। किसान आंदोलन ने भारतीय मीडिया को भी आईना दिखाया है। उन्होंने मीडिया को भी यह समझा दिया है कि उनके बिना भी आंदोलन किया जा सकता है।

यह तय है कि भारत के तमाम लोग कृषि क्षेत्र व किसान की समस्याओं के प्रति अनभिज्ञ हैं और इस तरह के आंदोलन को कमोवेश गैरजरुरी मानते हैं। इस अलगाव के पीछे बहुत से कारण हैं और सबसे बड़ा कारण यह है कि संपनन वर्ग किसान व किसानी को समझना ही नहीं चाहता। राहुल सांकृत्यायन ने लिखा है, ''महीनों की भूख से अधमरे उसके बच्चे चाहभरी निगाह से उस राशि (अनाज) को देखते हैं। वे समझते हैं दुख की अंधेरी रात कटने वाली है और सुख का सबेरा आने वाला है। उनको क्या मालूम कि वह उनके लिए नहीं है। इसके खाने के अधिकारी सबसे पहले वे स्त्री-पुरुष हैं, जिनके हांथों में एक भी घट्टा नहीं है, जिनके हाथ गुलाब जैसे लाल और मक्खन जैसे कोमल हैं, जिनकी जेठ की दुपहरिया खस की टट्टियों (अब एयर कंडीशनर), बिजली के पंखों या शिमला और नैनीताल में बीतती है।'' दशकों बाद भी आज वहीं स्थिति है। अधिकांश किसान उन 80 करोड़ भारतीयों में आते हैं जो सरकार द्वारा दी जा रही 15 किलो राशन की कथित सौगात को प्रधानमंत्री की तस्वीर वाले झोले में अपने घर ले जाकर जैसे तैसे अपना पेट भर रहे हैं। पोषण तो दूर की कौड़ी है। वहीं दूसरी ओर विपक्षी दलों ने भी इस अवसर पर वैसा कुछ भी नहीं किया, जिसकी उनसे अपेक्षा थी। दुखद यह है कि किसान आंदोलन तीन कानूनों और एमएसपी (न्यूनतम समर्थन मूल्य) तक सिमटा सा दिख रहा है। हमें यह भी समझना होगा कि मूल्य बढ़ा देने आदि से भी कृषि लंबे समय तक बच नहीं पाएगी।

आंदोलन की अवधि का उपयोग इस तलाश में होना था कि किस तरह से सामान्य किसान खेती कर पाए। वर्तमान कृषि का यह औद्योगिक स्वरूप किसान के विनाश का सबसे बड़ा कारण है। कितना भी परिश्रम वर्तमान कृषि प्रणाली के अन्तर्गत कर लिया जाए अंततः वह अस्थायी ही सिद्ध होगा। जमीन से यदि वर्ष में 3-4 फसलें ली जाएंगी तो उसमें कितने दिन तक उर्वश शक्ति बनी रहेगी? क्या सिंचाई होने से कृषि संकट समाप्त हो जाएगा? रासायनिक उर्वरक व कीटनाशक कृषि को स्थायित्व प्रदान कर पाएंगे? बिक्री की आसानी हो जाने से क्या कृषि का उद्धार संभव है? क्या हाईब्रिड व जीएम फसलें खेती - किसानी को बचा पाएंगी? क्या नकदी फसलें उगा लेने से किसान संकट मुक्त हो जाएंगे? ऐसे और भी तमाम प्रशन कृषि के सामने हैं। कृषि और पर्यावरण के आपसी संबंधों पर विचार करना होगा। कृषि में बढ़ती ऋणगस्तता भी चिंता का विषय है। कृषि का घटता रकबा भी विचारणीय प्रशन है। उपरोक्त तमाम प्रशनें या जिज्ञासा पर पिछले नौ महीनों में गंभीरता से विचार होना चाहिए था। किसानों के सामने भी सुनहरा मौका था, जबकि वे अपने बारे में विस्तार से विचार कर सकते थे। ऐसा ही कांग्रेस सहित अन्य विपक्षी दलों को करना चाहिए था। अगर अब तक नहीं किया है तो, अभी भी देरी नहीं हुई है। कृषि की जटिलताओं पर बहुत गंभीरता से विचार किए जाने की आवश्यकता है। इतने दिनों में किसी विकल्प पर बात तो शुरु होना चाहिए थी। किसान तो आंदोलन कर ही रहे हैं। परंतु अधिकांश विपक्ष प्रतिक्रिया देने में ही है। किसानों के बारे में सभी को सम्मिलित रूप से विचार करना होगा।

कृषि कानूनों की वापसी और फसलों का उचित मूल्य आज की अनिवार्यता है। परंतु यह तो केवल आरंभ है। कृषि की वास्तविक समस्या उसकी आधुनिक उत्पादन पद्धति है और उसमें सुधार नहीं आमूलचूल परिवर्तन की आवश्यकता महसूस हो रही है। अतएव राजनीतिक दलों और कृषि विशेषज्ञों का यह कर्तव्य बनता है कि वे कृषि पर बरप रहे संकटों पर गंभीरता से विचार करें। वे प्रतिक्रिया से क्रिया पर लौटें। अब लगने लगा है कि राजनीतिक दलों में कृषि और कृषक को लेकर धैर्य ही नहीं समझ भी कम होती जा रही है। राजनीति में चुनाव जब भी मुख्य मुद्दा बन जाता है, तब राजनीति अर्थात सामाजिक सरोकर जिसका पर्यायवाची है, कहीं पीछे छूट जाती है।

आज से करीब 80 बरस पहले राहुल सांकृत्यायन ने एक निबंध लिखा था, ''तुम्हारी जोकों की क्षय''। यह आज के संदर्भ में बेहद समकालीन लगता है और दूसरी ओर यह भी समझाता है कि आजादी के बाद तस्वीर ज्यादा नहीं बदली बल्कि पिछले कुछ बरसों में यह बेहद डरावनी हो गई है। ''जोंके ? जो अपनी परवरिश के लिए धरती पर मेहनत का सहारा नहीं लेतीं। वे दूसरों के अर्जित खून पर गुजर करती हैं। मानुषी जोंके पाशविक जोकों से ज्यादा भयंकर होती हैं।'' बाकी के लेख में वे मानुषी जोंकों की उत्पत्ति, उनके विकास व उसके द्वारा किए जा रहे विध्वंस को समझाते हैं और यह आलेख हिटलर पर आकर पूर्ण होता है। गौरतलब है भारत ही नहीं दुनियाभर के किसान बहुत अच्छी स्थिति में नहीं है। अब तो गर्व से बताया जा रहा है कि अमुक धनपति के पास ढ़ाई लाख एकड़ से भी ज्यादा जमीन है। और वहीं भारत में जो किसान नौ महीनों से उम्मीद लगाए बैठे हैं, रोज अपमानित हो रहे हैं, जिन्हें वही अनन खाते हुए गरिआया जाता है, जो उन्होंने अपने हाथ में घट्टे बनाकर उपजाया है। ऐसे घट्टे जिनकी वजह से हाथ में अब पानी भी नहीं ठहर पाता, इन उतार चढ़ावों से बह जाता है, और गुलाब के फूल के रंग की मक्खनी हथेलियां अठखेलियां करतीं रहतीं हैं। भारत में किसानों के पास औसतन 3 एकड़ से कम जमीन है और उस पर औद्योगिक कृषि का थोपा जाना सबसे बड़ा अन्याय है। रोज नई खाद, नए बीज, नए ट्रेक्टर के विज्ञापन बता रहे हैं कि कैसे जमीन को दांव पर लगातार और निश्चित तौर पर हारकर उसे जुए में गवां देना बजाए अपराध की श्रेणी में आने के विकास के नए पैमाने और मायने बनते जा रहे हैं। लाखों किसान आत्महत्या कर चुके हैं। कुछ भी नतीजा सामने नहीं आया। लाखों किसान करनाल में धरना दिए बैठे है। एक एसडीएम तक को बर्खास्त तो क्या निलंबित नहीं करवा पा रहे हैं। यह किसानों की नहीं लोकतंत्र की हार है। दिल्ली में नौ महीनों से बैठे किसानों की सुनवाई न होना लोकतंत्र की हार के साथ ही पूरे विपक्ष की भी हार है। कछुआ केवल कहानियों में ही जीतता है। असल जिंदगी में कछुए व खरगोश की दौड़ होती ही नहीं है। परंतु लोकतंत्र न तो कछुआ है और न खरगोश। अपशब्द बोलने वाले अधिकारी को सजा न दे पाना राजनीतिक शासन तंत्र की बेचारगी का प्रतीक है। यह घटना हमें बता रही है कि अफसरशाही पूरी व्यवस्था पर हावी हो चुकी है और राजनीति व राजनीतिज्ञ कठपुतलियों की तरह पीछे से आ रहे आदेशों को दोहरा रहे हैं। व्यवस्था अंततः नागरिकों की रक्षा करने के लिए बनाई जाती है ना कि उन्हें दंडित करने के लिए। ऑलिवर गोल्ड स्मिथ कहते हैं, ''वो देश बदहाल होता है जहां दौलत इकट्ठा होने लगती है और इंसान का पतन होने लगता है।'' करोड़ों किसान दौलत का विकेन्द्रीयकरण करते हैं। वे अपने पास कुछ भी जमा रख ही नहीं पाते। उनके द्वारा अर्जित धन हमेशा प्रचलन में रहता है, एक हाथ से दूसरे हाथ में आता - जाता रहता है। इसलिए यदि इस विश्व को बचना है तो उसे छोटी जोत की खेती को बचाना होगा। अडाणी - अंबानी महज प्रतीक हैं। पूरी दुनिया में खासकर विकसित देशों में नया नारा है ''फूड इज गोल्ड'' यानी खाद्यानन सोना है। तो सोचिए समृद्ध समाज यह सोना छोटे, मझौले व गरीब किसान को की हतेली में क्यों डालेगा । वो तो इसे रोकेगा ही। भारत सहित दुनियाभर की सरकारें यहीं कर रहीं हैं। भारत के किसान के लिए खुले में बैठना या सोना कोई अंजान स्थिति नहीं है। वह साल के आधे दिन ऐसे ही रहता है। वह जितने दिन खुले में रहेगा, लोकतंत्र उतना ही झुर्रीदार होता जाएगा। केंद्र सरकार से अपेक्षा रखना स्वयं को धोखे में रखना है। विपक्षी दलों के पास मौका है खुद को, भारत के लोकतंत्र को और संविधान को बचाने का। एक समानांतर राजनीतिक आंदोलन आज की अनिवार्यता है जो कि पूरी तरह किसानों को भूमिहीनों को, खेत मजदूरों को समर्पित हो। संभव हो तो गांधी के भारत लौटने के बाद के शुरुआती सालों की राजनीति और उनके हस्तक्षेप को समझें। हल उसी में छिपा है। क्योंकि सत्य तो हर काल में सत्य ही होता है।

भारतीय कृषि की वर्तमान स्थिति पर फुकुओका का की पुस्तक एक तिनके से क्रांति (वन स्ट्रा रिवोल्युशन) की ये पंक्तियां याद आती हैं। वे कहते हैं, ''इंसान अपनी छेड़छाड़ से कुछ गलत कर बैठते हैं और उस नुकसान को सुधारते नहीं और जब तमाम दुष्प्रभाव इकट्ठे होने लगते हैं तो उन्हें सुधारने पर पिल पड़ते हैं। और जब सुधार संबंधी काम ठीक जान पड़ते हैं तो वे इसे बेहतरीन उपलब्धि मान बैठते हैं।

अमेरिका पहुंचते ही खुली उन्मुक्त चंद की किस्मत, बोले- अब कोई अड़चन नहीं

नई दिल्ली (एजेंसी)। 2012 में उन्मुक्त चंद ने टीम इंडिया को अंडर-19 वर्ल्ड कप में खिताबी जीत दिलाई थी। उसके बाद से ही उनकी तुलना विराट कोहली से होने लगी। उन्मुक्त को भले ही सीनियर मेंस टीम की ओर इंटरनेशनल करियर का आगाज करने का मौका नहीं मिला, लेकिन कुछ ही सालों में उन्होंने भारतीय क्रिकेट में काफी नाम कमा लिया। उन्मुक्त इंडियन प्रीमियर लीग (आईपीएल) और डोमेस्टिक क्रिकेट में कुछ खास कमाल नहीं दिखा पाए। हाल में उन्होंने भारत में इंटरनेशनल क्रिकेट से संन्यास लिया और अमेरिका शिफ्ट हो गए।

अमेरिका में उन्मुक्त चंद ने माइनर लीग क्रिकेट में हिस्सा लिया। उन्मुक्त ने टीम को खिताब जिताने में अहम भूमिका निभाई। सिलिकॉन वैली स्ट्राइकर्स ने माइनर लीग क्रिकेट खिताब अपने नाम कर लिया है। उन्मुक्त ने इस खिताबी जीत के बाद ट्विटर पर टूर्नामेंट्स की कुछ तस्वीरें शेयर करते हुए लिखा, 'जहां से आप बिलॉन्ग करते हैं उस जगह पहुंचना बहुत अच्छा लगता है। यहां से अब कोई अड़चन नहीं। माइनर लीग क्रिकेट खिताब जीता।' सिलिकॉन वैली स्ट्राइकर्स ने फाइनल में न्यू जर्सी स्टैलियन्स को हराया। फाइनल मैच 3 अक्टूबर को खेला गया।

दिल्ली कैपिटल्स और चेन्नई सुपर किंग्स में होगी नंबर वन बनने की जंग

नई दिल्ली (एजेंसी)। आईपीएल 2021 के 50वें मुकाबले में प्वॉइंट टेबल में टॉप पर बैठी चेनन्ई सुपर किंग्स की भिड़ंत दिल्ली कैपिटल्स से होगी। दोनों ही टीमें प्लेऑफ में अपनी जगह पहले ही पक्की कर चुकी हैं।

इस मैच में एमएस धोनी और ऋषभ पंत जब एक दूसरे के खिलाफ मैदान पर उतरेंगे तो नंबर एक की कुर्सी पर दोनों की नजरें होंगी। दिल्ली अगर सीएसके को धूल चटाने में सफल रहती है तो टीम के 20 प्वॉइंट हो जाएंगे और प्वॉइंट टेबल में पंत की टीम नंबर वन बन जाएगी। वहीं, माही के बूढ़े शेर दिल्ली की युवा टीम का यह सपना हर हाल में चकनाचूर करना चाहेंगे। हालांकि, इस सीजन हुई पहली भिड़ंत में दिल्ली का खेल दमदार रहा था और टीम ने 7 विकेट से मैच को अपने नाम किया था। चेनन्ई सुपर किंग्स की टीम को अपने आखिरी मुकाबले में राजस्थान रॉयल्स के हाथों करारी हार झेलनी पड़ी थी। राजस्थान के बल्लेबाजों ने सीएसके बॉलिंग अटैक की जमकर धज्जियां उड़ाई थी और 190 रनों के लक्ष्य को महज 17 ओवर में चेज कर डाला था।

बैटिंग की बात करें तो ऋतुराज गायकवाड़ ने पिछले मैच में अपने आईपीएल करियर का पहला शतक ठोका था, तो फाफ डुप्लेसी भी बेहतरीन लय में चल रहे हैं। सुरेश रैना की जगह पर धोनी रॉबिन उथप्पा को एक मौका देने की सोच सकते हैं। मोईन अली और अंबाती रायडू ने जरूरत पड़ने पर टीम के लिए बल्ले से अहम योगदान दिया। हैं। राजस्थान के खिलाफ सैम करन की खूब पिटाई थी और इंग्लिश गेंदबाज ने चार ओवर में 55 रन लुटाए थे ऐसे में माही इस मैच में ड्वेन ब्रावो के साथ उतर सकते हैं। केएम आसिफ की जगह पर दीपक चाहर की वापसी हो सकती है।

कोलकाता नाइट राइडर्स के खिलाफ मिली हार के बाद मुंबई इंडियंस के खिलाफ दिल्ली के लड़कों ने जोरदार कमबैक किया था। आवेश खान और अक्षर पटेल ने मुंबई के मजबूत बैटिंग ऑर्डर को घुटने टेकने पर मजबूर किया था, तो श्रेयस अय्यर ने मुश्किल समय में एक और शानदार पारी खेलकर अपनी काबिलियत का नमूना पेश किया था।

ऋषभ पंत के दिमाग में इस समय नंबर एक की कुर्सी पाने की चाहत चल रही होगी और वह विनिंग कॉम्बिनेशन से छेड़छाड़ नहीं करना चाहेंगे। धवन का रिकॉर्ड वैसे भी माही की टीम के खिलाफ काफी दमदार रहा है। पृथ्वी शॉ से टीम इस मैच में बड़ी पारी की उम्मीद जरूर करेगी। गेंदबाजी में कगिसो रबाडा और एनरिज नॉर्टेजे ने अपने काम को बखूबी अंजाम दिया है तो अश्विन और अक्षर की जोड़ी भी दिल्ली के लिए खूब चली है।

इंग्लैण्ड के खिलाफ टेस्ट सीरीज को लेकर रोहित शर्मा बोले- नतीजा जो भी हो, मेरी नजर में हम 2-1 से जीते हैं

नई दिल्ली (एजेंसी)। लिमिटेड ओवर फॉर्मेट में टीम इंडिया के उप-कप्तान रोहित शर्मा ने हाल में इंग्लैंड दौरे पर टेस्ट सीरीज में शानदार प्रदर्शन किया। लिमिटेड ओवर फॉर्मेट में दुनिया के बेस्ट बल्लेबाजों में गिने जाने वाले रोहित ने पिछले कुछ सालों में टेस्ट क्रिकेट में भी सलामी बल्लेबाज के तौर पर अपनी खास जगह बना ली है। भारत और इंग्लैंड के बीच पांच मैचों की टेस्ट सीरीज खेली जानी थी, चार टेस्ट मैच के बाद टीम इंडिया सीरीज में 2-1 से आगे थी, पांचवां टेस्ट नहीं खेला जा सका। मैनचेस्टर में खेले जाने वाले आखिरी टेस्ट से पहले टीम इंडिया के जूनियर फीजियो के कोविड-19 टेस्ट में पॉजिटिव पाए जाने के बाद इसको स्थगित करना पड़ा था। रोहित ने कहा आने वाला समय बताएगा कि टेस्ट सीरीज का पांचवां मैच खेला जाएगा या नहीं? लेकिन उनके हिसाब से टीम इंडिया ने सीरीज 2-1 से अपने नाम कर ली है। रोहित ने एडिडास की तरह से की गई प्रेस कॉन्फ्रेन्स में कहा, 'मुझे नहीं पता कि आखिरी टेस्ट मैच के साथ क्या हुआ, क्या हम टेस्ट सीरीज जीत गए हैं या फिर हम अगले साल एक टेस्ट मैच और खेलेंगे? लेकिन मेरी नजर में हम सीरीज 2-1 से जीत गए हैं। मैं इस सीरीज को इस तरह से ही देखना चाहूंगा।' रोहित ने इस सीरीज में भारत की ओर से सबसे ज्यादा रन बनाए, जिसमें द ओवल मैदान पर खेली गई 127 रनों की पारी भी शामिल थी। द ओवल टेस्ट जीतकर भारत ने सीरीज में 2-1 से बढ़त बनाई थी। रोहित मैन ऑफ द मैच चुने गए थे।

रोहित ने कहा, 'टेस्ट क्रिकेट में अभी तक जो मेरा प्रदर्शन रहा है, उसके हिसाब से यह सीरीज काफी अच्छी रही, लेकिन मैं कहना चाहूंगा कि टेस्ट में अभी यह मेरा बेस्ट नहीं है। निजी तौर पर यह दौरा मेरे लिए काफी अच्छा रहा। टेस्ट चैंपियनशिप के फाइनल से 15-20 दिन पहले से मैंने इस दौरे के लिए काफी मेहनत की थी।' रोहित ने चार टेस्ट मैचों में 52.57 की औसत से 368 रन बनाए।

इरफान पठान ने बताया, दिल्ली कैपिटल्स के खिलाफ किस प्लानिंग के साथ उतर सकते हैं एमएस धोनी

नई दिल्ली (एजेंसी)। इंडियन प्रीमियर लीग (आईपीएल) 2021 के 50वें मैच में आज चेनन्ई सुपर किंग्स का सामना दिल्ली कैपिटल्स से होगा। इस हाई प्रोफाइल मैच से पहले भारत के पूर्व क्रिकेटर और वर्तमान में कमेंटेटर की भूमिका निभा रहे इरफान पठान ने सीएसके के कप्तान एमएस धोनी के उन प्लान्स को बताया है, जिन्हें वे आज के मैच में दिल्ली के खिलाफ अप्लाई सकते हैं। दोनों ही टीमों ने अब तक इस सीजन में कमाल का प्रदर्शन किया है, जिसके दम पर प्वॉइंट टेबल में भी इन दोनों टीमों का ही राज है। चेनन्ई टॉप स्थान की इस जंग में पिछले मैच में मिली हार से उबरकर दिल्ली का सामना करेगा। 'स्टार स्पोर्ट्स' से बात करते हुए इरफान ने कहा, 'पिच की स्पीड के साथ-साथ सिचुएशन के आधार पर धोनी को निश्चित रूप से पता होगा कि उस समय में क्या करना है। दिल्ली के पास ऋषभ पंत और शिमरोन हेटमायर हैं, जो बाएं हाथ के मिडिल ऑर्डर के बल्लेबाज हैं, ऐसे में मुझे लगता है कि मोईन अली को अब तक हमने जो देखा है, उससे कहीं अधिक गेंदबाजी करने की जरूरत है। श्रेयस ने चोट के बाद यूएई में खेले जा रहे आईपीएल 2021 के दूसरे फेज में वापसी की है और अब तक शानदार प्रदर्शन किया है। श्रेयस ने पिछले मैच में डिफेंडिंग चैम्पियन मुंबई इंडियंस के खिलाफ टीम को जिताने में अहम भूमिका निभाई थी। श्रेयस को लेकर इरफान ने कहा, ' उनके सामने अन्य गेंदबाजों से ज्यादा लेफ्ट आर्म स्पिनर रविन्द्र जडेजा को खेलते हुए देखा जा सकता है। हेजलवुड भी उनके खिलाफ आकर शॉर्ट गेंद का इस्तेमाल कर सकते हैं। मिडऑफ रखते हुए उनको लेग साइड में खेलने देना चाहिए।'

धवन को लेकर इरफान बोले, 'शिखर धवन एक शानदार क्रिकेटर हैं और शानदार फॉर्म में चल भी रहे हैं। लेकिन सीएसके के पास दीपक चाहर के रूप में एक अच्छा स्विंग गेंदबाज है जो वास्तव में धवन को आउट कर सकता है। धवन ऑफ स्टंप के बाहर खेलना पसंद करते हैं और उन्हें एक्सट्रा स्पीड भी पसंद है। इसलिए अगर चाहर गेंद को स्विंग कराते हैं और मिडिल स्टंप के आसपास रखते हैं तो उन्हें धवन का विकेट मिल सकता है।'

एशेज सीरीज पर गहराए संकट के बादल? इस हफ्ते मीटिंग के बाद ईसीबी लेगा फैसला

नई दिल्ली (एजेंसी)। इस साल ऑस्ट्रेलिया में होने वाली एशेज सीरीज पिछले कुछ समय से लगातार सुर्खियों में है और इंग्लैंड के कई खिलाड़ी इस समय ऑस्ट्रेलिया में लागू कोविड-19 नियमों को लेकर आशंकाएं जता चुके हैं। पांच मैचों की एशेज टेस्ट सीरीज आठ दिसंबर से शुरू होनी है और यह 18 जनवरी तक चलेगी। लेकिन इस दौरे का भविष्य अभी स्पष्ट नहीं है, क्योंकि पाबंदियों को देखते हुए इंग्लैंड के कई सीनियर खिलाड़ी बहिष्कार की संभावना पर विचार कर रहे हैं। इस पूरे मामले पर अब इंग्लैंड एंड वेल्स क्रिकेट बोर्ड (ईसीबी) ने बयान देते हुए कहा है कि वह इस सप्ताह एक मीटिंग का आयोजन करेगा, जहां तय किया जाएगा कि एशेज दौरे और टीम चयन के लिए ऑस्ट्रेलिया में स्थितियां पर्याप्त हैं या नहीं। ईसीबी ने अपने ऑफिशियल बयान में कहा, 'हम इस सप्ताह इंग्लैंड के खिलाड़ियों और टीम मैनेजमेंट से बात करने जा रहे हैं, जिससे एशेज दौरे के लिए प्रस्तावित इंतजामों के बारे में लेटेस्ट जानकारी दी जा सके। हम इन इंतजामों पर क्रिकेट ऑस्ट्रेलिया (सीए) के साथ नियमित और सकारात्मक बातचीत कर रहे हैं, क्योंकि इसमें लगातार डेवलपमेंट सामने आ रही है। हमारे लिए सबसे आगे खिलाड़ियों की हेल्थ और उनकी भलाई है। हमें यह सुनिश्चित करना है कि यह दौरा उन शर्तों के साथ आगे बढ़े, जहां खिलाड़ी और मैनेजमेंट अपना बेस्ट प्रदर्शन कर सके।

टी-20 वर्ल्ड कप से पहले बाबर आजम ने दी टीम इंडिया को टेंशन

नई दिल्ली (एजेंसी)। 17 अक्टूबर से यूएई और ओमान में खेले जाने वाले टी-20 विश्व कप से पहले पाकिस्तान के कप्तान बाबर आजम ने टीम इंडिया की टेंशन बढ़ा दी है। नेशनल टी-20 कप में हाल में शतकीय पारी खेलकर कई रिकॉर्ड्स को ध्वस्त करने के बाद बाबर ने अब और एक और कीर्तिमान हासिल कर लिया है। पाकिस्तान के कैप्टन ने टी-20 क्रिकेट में अपने 7 हजार रन पूरे कर लिए हैं और इस मामले में उन्होंने विस्फोटक बल्लेबाज क्रिस गेल और विराट कोहली को भी पीछे छोड़ दिया है।

बाबर आजम टी-20 क्रिकेट में सबसे तेज सात हजार रने पूरे करने वाले बल्लेबाज बन गए हैं। उन्होंने अपने करियर की 187वीं टी-20 पारी में यह मुकाम हासिल किया है।

भाजपा कार्यालय में सम्पन्न हुई कार्यकर्ताओं की कार्यशाला

अखंड भारत संदेश

ज्ञानपुर। भाजपा जिला कार्यालय मे मंडल मीडिया प्रभारी की एक महत्वपूर्ण कार्यशाला संपनन हुई। बैठक की अध्यक्षता एव नेतृत्व जिलाध्यक्ष विनय कुमार श्रीवास्तव ने किया।

इस बैठक के मुख्य अतिथि एव प्रदेश प्रवक्ता रमेश पांडेय ने कहा पहली बार मंडल स्तर पर मंडल मीडिया प्रभारी बनाए गए प्रदेश सरकार व संगठन की यह सोच है कि हर जगह से भारतीय जनता पार्टी के कार्यकर्ताओं को मजबूत किया जाए उन के माध्यम से जनता जनमानस का ख्याल रखा जाए। कार्यकर्ताओ का हर बिंदु पर ध्यान दिया जाएं। इसी क्रम में मुख्य वक्ता ने कहा पूर्व प्रदेश की सरकार सपा बसपा कांग्रेस सिर्फ जनता का शोषण किया है। विकास नहीं किया है। जिसके लिए पार्टी की सोच इस स्तर पर आई कि कहीं से भी कोई कमी ना हा।

जिसके लिए मंडल स्तर पर मीडिया प्रभारियों का गठन किया गया। कोविड-19.मे प्रदेश की सरकार ने अच्छा काम किया धारा .370.समाप्त करके अच्छा निणन्य लिया तमाम सारे विषयों पर मुख्य अतिथि प्रकाश डाला। इसी क्रम में जिलाध्यक्ष विनय कुमार श्रीवास्तव ने मुख्य अतिथि का आभार जताया और आपके ऊर्जावान उद्बोधन को ग्रहण करते हुए आपको आश्वस्त किया। जनपद भदोही से सभी मंडल मीडिया प्रभारी और संगठन के कार्यकर्ता.2022.मिशन को आसान करेंगे और जीतने का पूरा प्रयास करके.2022.को तीनों विधानसभा जीतकर उत्तर प्रदेश की झोली में डालने का काम करेंगे। इसी क्रम में काशी क्षेत्र से चलकर नागेंद्र जैन सीपी जैन उपस्थित रहे। इस मौके पर वरिष्ठ भाजपा नेता ओम प्रकाश तिवारी टंकी गुरु, सत्य शील गुप्ता, अनिल कुमार, मुनन, आशुतोष पांडेय ,सतीश जायसवाल, बृजेश यादवए टीएन शुक्ला इत्यादि प्रमुख लोग उपस्थित रहे।

जिलाध्यक्ष की अगुवाई में सपाइयों ने जिला मुख्यालय पर की जमकर नारेबाजी

अखंड भारत संदेश

मुख्यमंत्री का पुतला दहन करने का प्रयास कर रहे सपाईयों व पुलिस में हुई नोंक-झोंक

ज्ञानपुर। लखीमपुर-खीरी कांड में शोक संवेदना व्यक्त करने जा रहे समाजवादी पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिलेश यादव की गिरफ्तारी से सोमवार को जिले के सपाई आक्रोशित हो उठे। आनन-फानन में सपाई पार्टी जिलाध्यक्ष बाल विद्या विकास यादव की अगुवाई में जिला मुख्यालय की ओर कूच कर गए। हजारों की संख्या में सरपतहां पहुंचकर सपाइयों ने जिला मुख्यालय पर जमकर नारेबाजी की। इस दौरान पुलिस व सपाइयों के बीच पुतला दहन को लेकर नोंक-झोंक भी हुई। पूर्व विधायक जाहिद बेग मुख्यमंत्री का पुतला दहन करने का प्रयास कर रहे थे। पुलिस के छीना-झपटी में वे गिर पड़े। हालांकि सपाई पुतला दहन नहीं कर सके। पुलिस ने पुतले को अपने कब्जे में ले लिया। सपाइयों का आक्रोश देखकर प्रशासन ने उनसे ज्ञापन मांगा। जिलाध्यक्ष ने तीन सूत्रीय मांग पत्र सौंपा। सपाइयों का आक्रोश देखते हुए डीएम को खुद पत्रक लेने के लिए आना पड़ा और प्राप्ति की प्रति जिलाध्यक्ष को दिया। ज्ञापन के जरिए सपा ने मांग की है कि मृतक किसानों के परिवारों को 2-2 करोड़ रुपए की आर्थिक मदद व एक सदस्य को सरकारी नौकरी दी जाएं। गृहराज्य मंत्री व उप मुख्यमंत्री इस्तिफा दे। दोषियों के विरुद्ध धारा 302 के तहत मुकदमा दर्ज कर तत्काल जेल भेजा जाएं। इस दौरान धरने में मौजूद समाजवादी युवजन सभा के पूर्व राष्ट्रीय अध्यक्ष विकास यादव ने कहा कि लखीमपुर-खीरी कांड की जितनी भी निंदा की जाएं वह कम हैं। पार्टी के राष्ट्रीय अध्यक्ष अखिलेश यादव शोक संवेदना व्यक्त करने के लिए जा रहे थे। पहले तो उन्हें हाऊस अरेस्ट कर लिया गया। उसके बाद वे जाने की कोशिश किए तो पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। उन्होंने कहा कि भाजपा लोकतंत्र की हत्या कर रही है। अब शोक संवेदना व्यक्त करने को जाने नहीं दिया जा रहा है। अगर पुलिस इतनी संक्रियता लखीमपुर-खीरी में दिखाती तो 9 किसानों की जान नहीं जाती। धरना प्रदर्शन में औराई की पूर्व विधायक मधुबाला पासी ने कहा कि किसान आंदोलन को उत्तर प्रदेश के मुख्यमंत्री के इशारे पर उत्तर प्रदेश के गृह राज्य मंत्री व स्थानीय दबंग भाजपा नेताओं के द्वारा अभी तक कवर कर रहे पत्रकार कश्यप और 8 आंदोलनरत किसानों की हत्या से जनता आक्रोशित है। हत्या में शामिल गृह राज्य मंत्री को गिरफ्तारी किया जाय और दोसी लोगो के ऊपर कानूनी कार्रवाई करते हुए पत्रकार के परिवार के साथ न्याय किया जाय। पूर्व विधायक औराई मधुबला पासी ने कहा कि भाजपा सरकार में किसी हिंसक घटना को कवर करने वाले पत्रकार भी सुरक्षित नहीं है। क्योंकि भाजपा सरकार का जुल्म आम जनता तक न पहुंचे उसके लिए समाचार कवर कर रहे पत्रकारों की ही हत्या कर दे रहे है। कहा जैसे जैसे चुनाव नजदीक आ रहा है सरकार की बौखलाहट बढ़ती जा रही है। भाजपा सरकार को पता है कि इस बार जनता इन्हें सबक सिखाने के लिए मन बना चुकी है। कहा कि जनता समाजवादी पार्टी के साथ है। कहा कि सत्ता और पुलिस की लाठी के दम पर जनता की आवाज को दबाने की सरकार चाहे जितनी कोशिश कर ले वह किसी भी दशा में सफल नहीं हो सकती।

प्रियंका के नेतृत्व में अन्यायी सरकार को उखाड़ फेकेगीं कांग्रेस : राजेश

अखंड भारत संदेश

ज्ञानपुर। लखीमपुर खीरी में मोदी सरकार में केन्द्रीय गृह राज्यमंत्री के बेटे द्वारा सत्ता के मद मे मदांध होकर गांधीवादी तरीके से लोकतांत्रिक मूल्यो के साथ शांतिपूर्ण अपनी मांग कर रहे किसानो को अपनी गाड़ी से कुचलकर मार डालने एवं घायल कर देने से पीडित परिजनों का दुख दर्द बांटने जा रही जननेता प्रियंका गांधी जी को अवैधानिक तरीके से बिना किसी वारण्ट आर्डर के या धारा 144 का उल्लंघन किये बिना गिरफ्तार किये जाने के विरोध में जिला कांग्रेस कमेटी द्वारा जिलाध्यक्ष माबूद खां के नेतृत्व में ज्ञानपुर स्थित गांधी पार्क में गांधी जी की प्रतिमा के समक्ष कांग्रेसजनो द्वारा पहले धरना प्रदर्शन एवं उपवास किया गया। तत्पश्चात गिरफ्तारी भी दी गयी। इस अवसर पर वरिष्ठ कांग्रेस नेता एवं जिला उपाध्यक्ष राजेश दूबे ने कहा कि उत्तर प्रदेश की पुलिस सरकार की चाटुकारिता की हद तब पार कर दी। जब पीडित किसानो के परिजनों का दुख दर्द बांटने जा रही श्रीमती प्रियंका गांधी को सीतापुर में पुरूष पुलिस अधिकारी द्वारा धकेलने का प्रयास किया गया जो निन्दनीय है। श्री दूबे ने कहा कि यह योगी और मोदी की सरकार अग्रेजी हुकुमत से भी ज्यादा किसानो के साथ सौतेला एवं बर्बर व्यवहार कर रही है। अंग्रेज तो बाहरी थे परन्तु प्रदेश व देश की जो सरकार है इसकी कार्य गुजारी लोकतांत्रिक पद्घति से चुनी हुई सरकार के बजाय तानाशाह सरकार की है। जिसे हम कांग्रेसजनो के साथ देश व प्रदेश की जनता स्वीकार नही करेगी। हम गांधीवादी तरीके से शांतिपूर्ण ढंग से किसानो को जीत दिलाने तक लड़ेगे।

संचारी रोगःरोकथाम के लिए चलाएं प्रभावी अभियान : डीएम

अखंड भारत संदेश

भदोही। संचारी रोग एवं दस्तक अभियान से संबंधित बैठक का आयोजन कलेक्ट्रेट सभागार में जिलाधिकारी आर्यका अखौरी की अध्यक्षता में हुई। जिलाधिकारी आर्यका अखौरी ने कहा कि संचारी रोगों तथा दिमागी बुखार के प्रभावी नियंत्रण, त्वरित एवं सही उपचार के लिए प्रशासन पूरी तरह से सजग है। उन्होंने कहा कि संचारी रोगों को रोकने का कार्यक्रम सरकार की प्राथमिकताओं में से एक है। उन्होंने पंचायतीराज विभाग और स्वास्थ्य विभाग के अधिकारियों को निर्देश दिए है कि आपसी समन्वय स्थापित कर अभियान चलाया जाए। इसमें किसी भी प्रकार की लापरवाही न बरती जाए।

जिलाधिकारी आर्यका अखौरी ने की बैठक, दिए आदेश

उन्होंने कहा कि विगत वर्षों की भांति इस वर्ष भी संचारी रोगों की रोकथाम के लिए प्रभावी उपाय अपनाते हुए व्यापक अभियान चलाया जाएगा।

सीएम को भेजी जाएगी रिपोर्ट जिला मलेरिया अधिकारी ने कहा कि 18 अक्टूबर से 17 नवंबर तक संचारी रोग नियंत्रण अभियान, 18 अक्टूबर से एक नवंबर तक दस्तक अभियान चलाया जाएगा। कहा कि अभियान से संबंधित सभी विभाग अपनी-अपनी गतिविधियों का संचालन करना सुनिश्चित करेंगे। अभियान की समाप्ति के बाद सभी विभागों का लक्ष्य के सापेक्ष गतिविधि विवरण और एक्शन टेकन रिपोर्ट मुख्यमंत्री कार्यालय को प्रेषित की जाएगी। सभी विभाग समयबद्धता के साथ रिपोर्ट की पूर्णता पर विशेष ध्यान देना सुनिश्चित करें।

बच्चों को किया जाए जागरुक

जिलाधिकारी ने जिला बेसिक शिक्षा अधिकारी को निर्देश दिया सभी विद्यालयों में प्रार्थना के समय बच्चों को संचारी रोग एवं दस्तक अभियान के बारे में बताने का निर्देश दिया। जिससे बच्चे बीमारियों के बारे में जानकर गांव में अपने-अपने घरों के लोगों को बताएंगे। ताकि लोग बीमारियों के बारे में जानकर अपने घरों के पास साफ सफाई रखेंगे। जिलाधिकारी ने रोकथाम के लिए चलाए जाने वालेविभिनन अभियानों को लेकर तत्काल कार्यवाही का आदेश दिया है। इस अवसर पर मुख्य चिकित्साधिकारी संतोष कुमार चक, जिला पंचायत राज अधिकारी बालेश्वरधर द्विवेदी, जिला मलेरिया अधिकारी एवं संबंधित स्वास्थ्य विभाग के अधिकारीगण उपस्थित रहे।

बीजेपी के लिए चुनावी टेंशन बनेगा लखीमपुर खीरी का बवाल? हर अपडेट ले रही टॉप लीडरशिप

नई दिल्ली (एजेंसी)। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर में हुई हिंसा का नुकसान चुनाव में न हो इसके लिए भारतीय जनता पार्टी का केंद्रीय नेतृत्व अभी से एक्टिव हो गया है। पार्टी सूत्रों के मुताबिक बीजेपी के संगठन महामंत्री बीएल संतोष और यूपी चुनाव के लिए बीजेपी के प्रभारी धर्मेंद्र प्रधान लखीमपुर खीरी से जुड़ी गतिविधियों पर नजर बनाए हुए हैं। यूपी चुनाव से ठीक पहले हुई इस घटना को लेकर बीजेपी को लगता है कि विपक्षी दल राजनीतिक फायदे के लिए इसे भुनाने की कोशिश कर रही हैं। पार्टी के एक वरिष्ठ नेता ने कहा, ठलखीमपुर की घटना के बाद हमारी कोशिश होगी कि विपक्ष

प्रदेश के माहौल को और खराब ना कर पाए। बीजेपी ने तय किया है कि कांग्रेस पर खास तौर पर पलटवार किया जाए क्योंकि बीजेपी को लगता है कि कांग्रेस ने अपने मुख्यमंत्री और दूसरे नेताओं को यूपी भेज कर लखीमपुर खीरी की घटना का राजनीतिक लाभ लेने की कोशिश की है। एक वरिष्ठ बीजेपी नेता ने कहा कि ऐसा करके कांग्रेस ने गलत परंपरा की शुरुआत कर दी है। उन्होंने कहा, ठसोचिए अगर हम उनके राज्यों में बिगड़ी कानून व्यवस्था के बीच अपने मुख्यमंत्रियों को भेजना शुरू कर दें! हर चीज पर राजनीति नहीं की जानी चाहिए। सरकार ऐसे अवसरवादी राजनेताओं को माहौल खराब करने की इजाजत नहीं दे सकती।ठ

यूपी सरकार ने किसानों से बातचीत कर पीड़ित परिवारों के लिए मुआवजा और नौकरियों का एलान किया। हाईकोर्ट के रिटायर्ड जज रविवार को हुई घटना की जांच करेंगे। रविवार दोपहर बाद लखीमपुर खीरी में प्रदर्शनकारी किसानों पर कार चढ़ाने की घटना के बाद बाद हिंसा भड़की उठी। पूरे मामले में कुल आठ लोगों की मौत की सूचना है।

लखीमपुर कांड : संयुक्त किसान मोर्चा ने राष्ट्रपति को लिखा पत्र, अजय मिश्रा को बर्खास्त करने की उठाई मांग

नई दिल्ली (एजेंसी)। उत्तर प्रदेश के लखीमपुर खीरी में हुई हिंसा के मामले में संयुक्त किसान मोर्चा (एसकेएम) ने सोमवार को राष्ट्रपति रामनाथ कोविंद को पत्र लिखकर उनसे केन्द्रीय गृह राज्य मंत्री अजय मिश्रा को केंद्रीय मंत्रिमंडल से बर्खास्त करने और सुप्रीम कोर्ट की निगरानी में एक विशेष जांच दल (एसआईटी) गठित करने की मांग की है। दरअसल, यूपी के उपमुख्यमंत्री केशव प्रसाद मौर्य के दौरे को लेकर किसानों के विरोध प्रदर्शन के दौरान रविवार को लखीमपुर खीरी जिले के तिकोनिया इलाके में भड़की हिंसा में चार किसानों समेत आठ लोगों की मौत हो गई थी।

ड्रग्स केसः शाहरुख खान के समर्थन में आए शशि थरूर, आर्यन को लेकर बोले- सहानुभूति रखें दोस्तों

नई दिल्ली (एजेंसी)। कांग्रेस नेता शशि थरूर ने सोमवार को बॉलीवुड सुपरस्टार शाहरुख खान के समर्थन की बात कही है। ड्रग्स मामले में शाहरुख खान के बेटे आर्यन की गिरफ्तारी को लेकर शशि थरूर ने लोगों से सहानुभूति रखने की बात कही है।

बता दें कि कॉर्डेलिया क्रूज़ से प्रतिबंधित ड्रग्स जब्त किए जाने के मामले में गिरफ्तार शाहरुख खान के बेटे आर्यन खान, अरबाज सेठ मर्चेंट और मुनमुन धमेचा को 7 अक्टूबर तक एनसीबी की हिरासत में भेज दिया गया है। इस मसले को लेकर शशि थरूर ने ट्वीट करते हुए कहा कि मैं इन दवाओं का प्रशंसक नहीं हूं और कभी भी कोई कोशिश नहीं की है। लेकिन मैं उन लोगों को लेकर घृणित हूं जो शाहरुख खान के बेटे की

गिरफ्तारी पर महाकाव्य लिख रहे हैं। थरूर ने कहा कि कुछ सहानुभूति रखें, दोस्तों। उन्होंने कहा कि जनता की चकाचौंध काफी खराब है, इसमें 23 साल के बच्चे के चेहरे को खुशी से रगड़ने की जरूरत नहीं है। एनसीबी ने शनिवार शाम को कॉर्डेलिया क्रूज़ कंपनी के जहाज पर एक ड्रग्स पार्टी का भंडाफोड़ किया था और बॉलीवुड सुपरस्टार शाहरुख खान के बेटे आर्यन खान और दो महिलाओं सहित सात अन्य को गिरफ्तार किया था। 23 वर्षीय आर्यन को 7 अक्टूबर तक एनसीबी की हिरासत में भेज दिया गया है।

सीएम चन्नी ने किया बड़ा प्रशासनिक फेरबदल, 24 आईएएस और 12 आईपीएस अफसरों के ट्रांसफर

चंडीगढ़ (एजेंसी)। पंजाब में चरणजीत सिंह चन्नी सरकार ने प्रदेश में बड़ा प्रशासनिक फेरबदल किया है। प्रदेश के 24 आईएएस और 12 पीसीएस अधिकारियों का ट्रांसफर किया गया है। जिसमें वरिष्ठ आईएएस अधिकारी अनुराग अग्रवाल को एवेणु प्रसाद की जगह अतिरिक्त मुख्य सचिव-सह-वित्तीय आयुक्त (कराधान) नियुक्त किया गया है। प्रसाद अब पंजाब स्टेट पावर कॉरपोरेशन के अध्यक्ष और प्रबंध निदेशक हैं और पंजाब स्टेट ट्रांसमिशन कॉरपोरेशन लिमिटेड के सीएमडी का अतिरिक्त प्रभार संभालेंगे। पीटीआई की मानें, सरकार की ओर से जारी आदेश के अनुसार, केएपी सिन्हा, जो प्रमुख सचिव, वित्त हैं को प्रमुख सचिव बिजली का अतिरिक्त प्रभार दिया गया है। स्कूल शिक्षा सचिव कृष्ण कुमार को सचिव, उच्च शिक्षा और भाषा, सचिव, एनआरआई मामलों और पंजाब इंफ्रास्ट्रक्चर डेवलपमेंट बोर्ड के एमडी की नियुक्ति दी है। आईएएस अजय शर्मा अब स्कूल शिक्षा के नए सचिव होंगे। तनु कश्यप को तकनीकी शिक्षा एवं औद्योगिक प्रशिक्षण का निदेशक नियुक्त किया गया है। जबकि दिलराज सिंह को कृषि सचिव का पद दिया गया है. बबीता को फाजिल्का का उपायुक्त और अरविंद पाल सिंह संदू को उपायुक्त बठिंडा बनाया है। हरीश नायर को डीसी मोगा, जबकि संदीप हंस पटियाला के नए डीसी होंगे।

नीति आयोग की रेटिंग में बिहार काफी नीचे, नाराज नीतीश बोले- हम भेजेंगे अपना जवाब

पटना (एजेंसी)। सीएम ने सोमवार को 'जनता के दरबार में मुख्यमंत्री' कार्यक्रम के बाद पत्रकारों से बातचीत के दौरान बिहार की स्वास्थ्य व्यवस्था पर नीति आयोग की रिपोर्ट को लेकर पूछे गए सवाल के जवाब में कहा कि इस रिपोर्ट पर बिहार सरकार अपना जवाब भेजेगी कि यह उपयुक्त नहीं है। बिहार में हुए कार्यों पर गौर किए बिना रिपोर्ट जारी कर देना ठीक नहीं है। उन्होंने कहा,' मुझे पता नहीं है कि नीति आयोग किस प्रकार और किसके माध्यम से अपना काम कराती है। नीति आयोग की अगली बैठक में अगर हमें जाने का मौका मिला तो एक-एक बात हम फिर से उनके सामने रखेंगे। एसेसमेंट करने से पहले बुनियादी चीजों की जानकारी होनी चाहिए। सभी राज्य को एक समान बता देना ठीक नहीं है।' मुख्यमंत्री ने कहा कि देश के सभी राज्यों को मापने का एक आधार नहीं होना चाहिए। जो विकसित राज्य है और जो पिछड़े हैं, इन्हें अलग-अलग करके देखा जाना चाहिए। इससे पिछड़े राज्यों को आगे लाने में सहूलियत होगी। उन्होंने कहा कि बिहार आबादी के हिसाब से देश में तीसरे नंबर पर है, उत्तर प्रदेश और महाराष्ट्र के बाद बिहार है लेकिन क्षेत्रफल के हिसाब से 12 वें स्थान पर है। बिहार में प्रति वर्ग किलोमीटर आबादी देश में सबसे ज्यादा है, बिहार की इन परिस्थितियों को भी ध्यान में रखना होगा।

मुख्यमंत्री ने कहा कि बिहार में कई मेडिकल कॉलेज और

अस्पतालों की स्थापना की गई है। इंदिरा गांधी आयुर्विज्ञान संस्थान काफी बेहतर ढंग से काम कर रहा है। पटना में अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (एम्स) लिए बिहार सरकार ने जमीन की व्यवस्था की ताकि जितना जल्दी हो वहां का काम शुरू हो सके। पटना में एम्स भी ठीक ढ़ंग से चल रहा है। अस्पतालों में बेडों की संख्या भी काफी बढ़ाई गयी है। उन्होंने कहा कि क्या यह नीति आयोग को पता नहीं है कि पटना मेडिकल कॉलेज अस्पताल (पीएमसीएच) को 5,400 बेड का अस्पताल बना रहे हैं और काम शुरू कर दिया गया है। उन्होंने कहा कि स्वास्थ्य के क्षेत्र में बिहार में जो भी काम हो रहा है सकी रिपोर्ट नीति आयोग को हमेशा भेजी जाती रही है। स्वास्थ्य के क्षेत्र मे पहले बिहार की क्या स्थिति थी, ये सभी को पता है। बिहार को लेकर एक रिपोर्ट भी पहले हमने पढ़ी थी कि बिहार के गरीब परिवारों को भोजन से ज्यादा इलाज पर खर्च करना पड़ता है। पहले बिहार में स्वास्थ्य के क्षेत्र में बुनियादी सुविधाओं का अभाव था। बिहार के सरकारी अस्पतालों में काफी कम लोग इलाज कराने जाते थे। उस समय अस्पतालों में बेड पर मरीज की जगह कुत्ते बैठे रहते थे। पहले प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों में एक महीने में औसतन 39 लोगों का इलाज होता था। मुख्यमंत्री ने कहा कि जब उन्हें काम करने का मौका मिला तो स्वास्थ्य के क्षेत्र में तेजी से काम शुरू किया गया। गौरतलब है कि खुफिया उनकी सरकार ने प्राथमिक स्वास्थ्य केंद्रों और अस्पतालों में डॉक्टरों के साथ-साथ दवा की मुफ्त व्यवस्था उपलब्ध करायी। इसके कारण अब पीएचसी में एक महीने में औसतन 10 हजार मरीजों का इलाज होता है। उन्होंने कहा कि इतना ही नहीं अब नई टेकनेलॉजी का इस्तेमाल कर लोग घर बैठे अपना इलाज करा सकते हैं। सीएम ने नीति आयोग सारे देश को अगर एक ही प्रकार का मान कर चल रहा है तो यह विचित्र बात है। आज के दिन महाराष्ट्र से बिहार की तुलना नहीं की जा सकती है। सबसे धनी राज्य की तुलना सबसे गरीब राज्य से नहीं हो सकती है।

ममता के विधायक बनते ही राज्यपाल धनखड़ ने कम की स्पीकर की शक्ति, नहीं दिलवा पाएंगे एमएलए को शपथ

कोलकाता (एजेंसी)। पश्चिम बंगाल के राज्यपाल जगदीप धनखड़ ने राज्य विधानसभा के स्पीकर बिमन बनर्जी से विधायकों को शपथ दिलवाने की शक्ति छीन ली है। सूत्रों ने सोमवार को यह बताया कि ऐसा पहली बार है जब बंगाल के राज्यपाल ने इस तरह का कदम उठाया हो। राज्यपाल धनखड़ की इस कार्रवाई से स्पीकर और उनके बीच पहले से जारी तनातनी और बढ़ने के आसार हैं। बता दें कि भवानीपुर उपचुनाव जीतने के बाद ममता बनर्जी को सीएम पद पर बने रहने के लिए अगले माह की 4 तारीख से पहले विधानसभा सदस्य के तौर पर शपथ लेना जरूरी है। विधानसभा से जुड़े एक अधिकारी ने पहचान जाहिर न करने की शर्त पर हमारे सहयोगी हिन्दुस्तान टाइम्स को बताया, 'भवानीपुर और मुर्शिदाबाद जिले की दो सीटों पर हुए उपचुनाव से कुछ दिन पहले ही राजभवन

की तरफ से स्पीकर के दफ्तर को एक चिट्ठी मिली थी। इस चिट्ठी में संविधान के अनुच्छेद 188 का जिक्र किया गया है, जो राज्यपाल को शपथ दिलवाने की शक्ति देता है।'

मुख्यमंत्री बने रहने के लिए, तृणमूल कांग्रेस चीफ ममता बनर्जी को 4 नवंबर तक विधानसभा के सदस्य के तौर पर शपथ लेना जरूरी है। ममता बनर्जी ने रविवार को ही भवानीपुर उपचुनाव में रिकॉर्ड वोटों से जीत दर्ज की है। टीएमसी नेताओं का कहना है कि ममता दुर्गा पूजा से पहले ही सभी औपचारिकताएं निपटा लेना चाहती हैं, जिसमें अब एक हफ्ते से भी कम का समय बचा है। मार्च-अप्रैल में हुए बंगाल विधानसभा चुनावों में नंदीग्राम सीट से हारने के बाद ममता बनर्जी ने 5 मई को मुख्यमंत्री पद की शपथ ली थी।

जुलाई 2019 में बंगाल के राज्यपाल बनने के बाद से ही जगदीप धनखड़ और राज्य सरकार के रिश्ते कड़वाहट से भर गए थे। पहचान छिपाए रखने की शर्त पर कुछ टीएमसी नेताओं ने बताया कि जगदीप धनखड़ की ताजा कार्रवाई से ये रिश्ते और तल्ख हो सकते हैं। इससे पहले भी बंगाल विधानसभा स्पीकर और राज्यपाल के बीच टकराव की स्थिति उस समय पैदा हो गई थी जब धनखड़ ने विधानसभा में अपने भाषण का लाइव टेलीकास्ट करने को कहा था। स्पीकर बिमन बनर्जी ने इसकी इजाजत नहीं दी थी। स्पीकर ने यह भी शिकायत की थी कि धनखड़ उनके काम में दखल दे रहे रहे हैं।

विधानसभा के एक अधिकारी ने बताया कि राजभवन की चिट्ठी में लिखा है कि मंत्रियों और विधायकों को शपथ दिलवाने का अधिकार राज्यपाल को मिला है। राज्यपाल जहां राजभवन में मंत्रियों को शपथ दिलवाते हैं, वहीं स्पीकर राज्यपाल के प्रतिनिधि के तौर पर सदन में विधायकों को शपथ दिलवाते हैं। इस मामले में बिमन बनर्जी ने कोई भी बयान देने से इनकार कर दिया है। अधिकारियों ने बताया कि ममता बनर्जी ने सोमवार को स्पीकर से फोन पर बात की है और उनके दफ्तर के लोग राजभवन के संपर्क में हैं।

मैं आतंकवादी नहीं, ये बादशाह के हुक्म का नतीजा... अदालत में शरजील इमाम

नई दिल्ली (एजेंसी)। जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय के छात्र शरजील इमाम ने सोमवार को दिल्ली की एक अदालत में कहा कि वह कोई आतंकवादी नहीं है और उस पर चल रहा मामला ङ्घविधि द्वारा स्थापित एक सरकार के कारण नहीं बल्कि किसी बादशाह के हुक्मङ्घ का नतीजा है। संशोधित नागरिकता कानून (सीएए) और राष्ट्रीय नागरिक पंजी (एनआरसी) के विरोध में हुए प्रदर्शन के दौरान भड़काऊ बयान देने के आरोप में इमाम को गिरफ्तार किया गया था। इमाम ने 2019 में दो विश्वविद्यालयों में भाषण दिया था, जिसमें उन्होंने कथित तौर पर असम और बाकी पूर्वोत्तर को भारत से ङ्घकाटनेङ्घ की धमकी दी थी। इस संबंध में दर्ज मामले की सुनवाई अतिरिक्त सत्र न्यायाधीश अमिताभ रावत ने की। जिन भाषणों के लिए इमाम को गिरफ्तार किया गया था वह कथित तौर पर 13 दिसंबर 2019 को जामिया मिल्लिया इस्लामिया और 16 दिसंबर 2019 को अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय में दिए गए थे।

इमाम पर विधि विरुद्ध क्रियाकलाप (निवारण) अधिनियम (यूएपीए) के तहत मामला दर्ज है और वह जनवरी 2020 से न्यायिक हिरासत में हैं। उनके विरुद्ध राजद्रोह का मामला भी दर्ज है। इमाम के वकील तनवीर अहमद मीर ने जमानत का अनुरोध करते हुए अदालत में कहा कि सरकार की आलोचना करना राजद्रोह नहीं माना जा सकता। मीर ने कहा, ङ्घअभियोजन की दलील का पूरा सार यह है कि अब अगर हमारे विरोध में बोलेंगे तो यह राजद्रोह होगा।उन्होंने कहा कि इमाम को सजा इसलिए नहीं दी जा सकती कि उसने सीएए या एनआरसी की आलोचना की। वकील ने कहा, ङ्घशरजील इमाम का अभियोजन विधि द्वारा स्थापित एक सरकार की अपेक्षा किसी बादशाह का हुक्म अधिक प्रतीत होता है। यह वो तरीका नहीं है जैसे किसी सरकार को काम करना चाहिए। सरकार बदल भी सकती है। कुछ भी स्थायी नहीं है। विशेष लोक अभियोजक अमित प्रसाद ने कहा कि विरोध जताने के मौलिक अधिकार का अर्थ यह नहीं है कि सार्वजनिक रूप से लोगों को नुकसान पहुंचाया जाए। उन्होंने अदालत में कहा कि इमाम के भाषण के बाद हिंसक दंगे भड़के। प्रसाद ने जमानत का विरोध करते हुए कहा, ङ्घउसने यह कहकर अराजकता फैलाने का प्रयास किया कि मुस्लिम समुदाय के लिए उम्मीद नहीं बची है और अब कोई रास्ता नहीं है।

ताइवान के खिलाफ चीन का अब तक का सबसे बड़ा शक्ति प्रदर्शनए हवाई क्षेत्र में भेजा 56 लड़ाकू विमान

ताइपे (एजेंसी)। ताइवान में चीन अपनी हरकतों से बाज नहीं आ रहा है। चीन ने सोमवार को बड़ी हिमाकत दिखाते हुए ताइवान के डिफेंस जोन में एक दो नहीं पूरे 56 लड़ाकू विमान भेज दिए थे। चीन की इस हरकतों को देखते हुए ताइवान ने बिजिंग ने इस गैर.जिम्मेदार और भड़काऊ कार्रवाई को रोकने की अपील की है। ताइवान के रक्षा मंत्रालय के मुताबिक उड़ान भरने वाले लड़ाकू विमानों में 34 जे.16 लड़ाकू विमान और 12 एच.6 बमवर्षक विमान थे। ताइवान की वायुसेना ने चीन के लड़ाकू विमानों को वापस लौटने पर

मजबूर किया और अपनी वायु रक्षा प्रणाली पर चीनी युद्धक विमानों की गतिविधियों पर नजर रखी।

चीन ने शुक्रवार को अपने राष्ट्रीय दिवस के मौके पर 38 और शनिवार को 39 लड़ाकू विमानों को ताइवान की ओर भेजा था। रविवार को उसने 16 अतिरिक्त विमानों को उसकी ओर भेजा था। बता दें कि पिछले दो सालों में चीन ताइवान के खिलाफ ऐसे कई कदम उठा चुका है। ताइवान को धमाकाने के इरादे से चीन लगातार अपने लड़ाकू विमान को उसके हवाई क्षेत्र में भेजता रहा है। शुक्रवार से लेकर अभी तक चीन ऐसे ही लगभग 150 लड़ाकू विमानों को ताइवान के हवाई क्षेत्र में भेज चुका है।ताइवान के वायु रक्षा पहचान क्षेत्र में इतने विमानों की आवाजाही के बाद अमेरिकी विदेश विभाग ने वक्तव्य जारी करके कहा थाए श्हम बीजिंग से अनुरोध करते है कि वह ताइवान के खिलाफ सैन्यए कूटनीतिक और आर्थिक दबाव एवं बल पूर्वक कार्रवाई बंद करे।

फूमियो किशिदा होंगे जापान के नए प्रधानमंत्री

नई दिल्ली (एजेंसी)। निवर्तमान जापानी प्रधानमंत्री योशिहिदे सुगा ने किशिदा के पदभार ग्रहण करने का रास्ता साफ करते हुए अपने मंत्रिमंडल को भंग कर दिया हैणिन्वर्तमान जापानी प्रधानमंत्री योशिहिदे सुगा ने अपने मंत्रिमंडल को भंग कर दिया है।

जिससे फूमियो किशिदा के पदभार ग्रहण करने का रास्ता साफ हो गया हैण् जापान के नए प्रधानमंत्री किशिदा एक विशेष संसदीय सत्र के बाद

सोमवार को औपचारिक रूप से पदभार ग्रहण करने के लिए तैयार हैंण् किशिदा ने पिछले हफ्ते सत्तारूढ़ लिबरल डेमोक्रैटिक पार्टी ;एलडीपीद्ध के नेता पद का चुनाव जीता थाण् इस जीत के साथ ही उनका प्रधानमंत्री बनना तय थाण् वह संसदीय वोट के बाद प्रधानमंत्री के रूप में पद ग्रहण करेंगेए जिसे औपचारिकता के रूप में माना जा रहा हैण्

जापान की संसद के निचले सदन में एलडीपी को बहुमत प्राप्त हैण् 1885 में देश ने कैबिनेट प्रणाली को अपनाया थाए किशिदा जापान के 100वें प्रधानमंत्री बनने जा रहे हैंण् सुगा ने पिछले साल सितंबर में ही प्रधानमंत्री पद संभाला थाए जब पूर्व प्रधानमंत्री शिंजो आबे ने स्वास्थ्य संबंधी कारणों का हवाला देते हुए इस्तीफा दे दिया थाण् सुगा ने इसी साल सितंबर के शुरुआत में सत्तारूढ़ पार्टी के नेतृत्व के दोबारा चुनावों में हिस्सा नहीं लेना का ऐलान किया थाण् सुगा की लोकप्रियता उनके महामारी प्रबंधन की तीखी आलोचना के बाद गिर गई थी।

किशिदा से क्या उम्मीदें हैंघ् जापान के नए प्रधानमंत्री के कंधे पर कोरोनो वायरस महामारी के बाद अर्थव्यवस्था को फिर से पटरी पर लाने की जिम्मेदारी हैण् किशिदा का कहना है कि वह पूर्व प्रधानमंत्री द्वारा शुरू किए गए ष्आबेनॉमिक्सष् के रूप में जाने वाले आर्थिक सुधारों को जारी रखना चाहते हैंए जो विस्तारवादी मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों पर ध्यान केंद्रित करते हैंण् वे इस साल के अंत तक कोरोना के कारण प्रभावित कारोबार को सहायता देने के लिए करीब 269 अरब डॉलर के बड़े पैमाने पर प्रोत्साहन पैकेज को एक साथ रखना चाहता हैंण् उन्होंने पिछले दो दशकों के नव.उदारवाद से दूर हटने का वादा किया और षन्ए जापानी पूंजीवादष् की घोषणा की हैण् उन्होंने कर कानूनों में बदलाव करके और लोगों की आय बढ़ाने के उपाय पर भी काम करने की योजना बनाई हैण् कैबिनेट में किसको मिलेगी जगहघ् आने वाली सरकार में शीर्ष पद या तो पूर्व रूढ़िवादी प्रधानमंत्री शिंजो आबे के सहयोगियों या निवर्तमान वित्त मंत्री तारो आसो जा सकते हैंण् आबे के विश्वासपात्र अकीरा अमारी एलडीपी के नए महासचिव हैंण् जापानी मीडिया का कहना है कि विदेश मंत्री तोशिमित्सु मोतेगी और आबे के भाई रक्षा मंत्री नोबुओ किशी अपने पद पर बने रहेंगेण् किशिदा 28 नवंबर को होने वाले चुनाव में एलडीपी का नेतृत्व करेंगे।

आईएस के ठिकानों पर तालिबान की जवाबी कार्रवाईए कई विद्रोहियों को मार गिराने का दावा

नई दिल्ली (एजेंसी)। तालिबान ने सोमवार को कहा कि उसके लड़ाकों ने अफगानिस्तान की राजधानी में इस्लामिक स्टेट से जुड़े एक ठिकाने पर छापा मारा। इस दौरान कई विद्रोहियों को मार गिराया। इसे ईदगाह मस्जिद के बाहर रविवार को हुए बम विस्फोट के खिलाफ जवाबी कार्रवाई के तौर पर देखा जा रहा हैए जिसमें पांच लोग मारे गए थे। हालांकिए इस हमले की जिम्मेदारी किसी ने नहीं लीए लेकिन शक की सुई इस्लामिक स्टेट पर ही गई। आपको बता दें कि 15 अगस्त को काबुल पर कब्जे के बाद से इस्लामिक स्टेट ने अपने दुश्मन तालिबान के खिलाफ हमले तेज कर दिए हैं। रविवार को जिस समय धमाके हुए उस समय तालिबान के प्रवक्ता जबीहुल्ला मुजाहिद की मां के निधन पर शोक जताने के लिए तालिबान अधिकारी मस्जिद में जमा हुए थे।मुजाहिद ने सोमवार को एक बयान में कहा कि तालिबान बलों ने उत्तरी काबुल में खैर खाना के पड़ोस में इस्लामिक स्टेट के एक ऑपरेशन सेंटर पर छापा मारा। इसने यह नहीं बताया कि ऑपरेशन में कितने आईएस विद्रोही मारे गए या कोई तालिबानी घायल हुआ या नहीं। इस्लामिक स्टेट समूह ने 26 अगस्त को काबुल एयरपोर्ट के बाहर हुए आत्मघाती हमले की जिम्मेदारी ली थीए जिसमें 169 से अधिक अफगान और 13 अमेरिकी सेना मारे गए थे। वहींए इस साल की शुरुआत मेंए इस्लामिक स्टेट पर अफगानिस्तान के दश.ए.बारची के एक स्कूल पर क्रूर हमले के लिए जिम्मेदार ठहराया गया था। इस हमले में 80 से अधिक छात्र मारे गए थे। रविवार की बमबारी तालिबान के लिए बढ़ती चुनौतियों को रेखांकित करती है। समूह ने अपने 20 साल के विद्रोह के दौरान लगातार हमले किएए लेकिन अब उन प्रतिद्वंद्वी उग्रवादियों को रोकने की कोशिश का सामना करना पड़ रहा है जिन्होंने समान तरीकों का इस्तेमाल किया है। वे एक राष्ट्रीय आर्थिक मंदी के दौरान ऐसा कर रहे हैं।

अंखड भारत संदेश के लिए स्वामी श्री योगी सत्यम क्रियायोग आश्रम एवं अनुसंधान संस्थान झूंसी, प्रयागराज 211019 से प्रकाशित एवं रामा प्रिंटिग प्रेस 53/25/1ए बेली रोड नया कटरा प्रयागराज से मुद्रित।

मुद्रक/प्रकाशक

स्वामी श्री योगी सत्यम पी.आर.बी. एक्ट के अन्तर्गत समाचारों के चयन के लिए उत्तरदायी। इस समाचार पत्र में प्रकाशित समस्त समाचारों से संबंधित विवादों का न्याय क्षेत्र प्रयागराज होगा। आरएनआई नं.

UPHIN 2001/9025